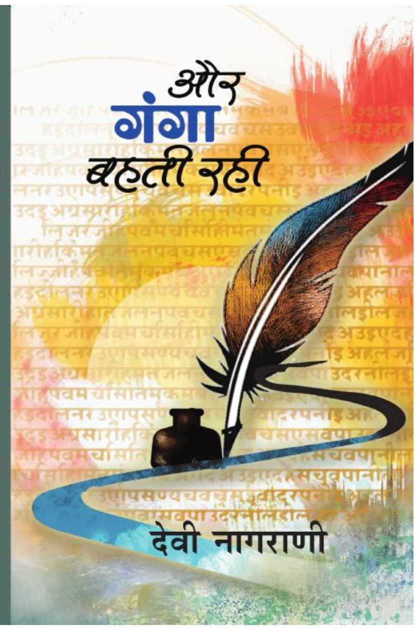


और गंगा बहती रही   देवी नागराणी   स्नेहवर्धन प्रकाशन



देवी नागराणी
E-mail : dnagrani@gmail.com

ISBN 978-93-87628-09-0
मूल्य २७०/- $-5

स्नेहवर्धन प्रकाशन

और गंगा बहती रही

(सिंधी लघुकथाओं का हिंदी अनुवाद)

देवी नागरानी

स्नेहवर्धन प्रकाशन

पुणे

स्नेहवर्धन प्रकाशन : क्र. १२०६

और गंगा बहती रही (Aur Ganga Bahati Rahi)
(कथासंग्रह)

प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. एल.व्ही. तावरे
स्नेहवर्धन, ८६३ सदाशिव पेठ,
महात्मा फुले सभागृहामागे, पुणे ४११ ०३०
स्थिरभाष : (०२०) २४४७ २५ ४९ /२४४ ३६ ९६१
ई मेल : snehaltawre@gmail.com

प्रथम संस्करण : ११ मई २०१७

मुखपृष्ठ : संतोष धोंगडे

अक्षरजुळणी : सुनीता, पुणे

मुद्रणस्थळ : स्मिता प्रिंटिंग प्रेस, पुणे

ISBN-978-93-87628-09-0

पृष्ठसंख्या : १२८

Printed Copies : 500

मूल्य : ₹ २७०/-
$ 5

शब्दों की कोख में निहां हैं मेरी
संवेदनात्मक एवं रचनात्मक सृजन की शक्ति
जो मुझमें आदमीयत के नए अंकुर
कभी नए रंगों में तो कभी नए सुरों में
अछूते अलौकिक स्पर्श से
नवाज़िश करते हुए स्पंदित करती है ।

– देवी नागरानी

अनुक्रमणिका

एक कथा की कलात्मक अभिव्यक्ति में लघुकथा का महत्व

शब्दों की कोख में लघुकथा का महत्त्व-

हर आम आदमी अपनी भावनाओं को शब्दों में जीवित रखता है, जिसके रचनात्मक सृजन में मानवता के मूल्य उभर आते हैं।

किसी भी रचना की कसौटी उसके बाह्य आकार से नहीं पर उनमें व्यक्त किए हुए संघर्ष व विडंबनाओं के सृजन में अभिव्यक्त होती है जहाँ उसकी शैली, शब्द संधि, शब्दों के रख-रखाव में कथा के तत्वों का कायम रखता लघु आकार ही उसकी परिभाषा बन जाता है. लघुकथा और कहानी को एक दूजे से अलग कर पाना मुश्किल है। लघुकथा अपनी लघुता में प्रवेश करके संवाद करती है, कहानियाँ अपने कथ्य और शिल्प के द्वारा, सामाजिक परिस्थितियों से गुज़रते हुए कुछ अनुभवों को एक सूत्र से बांधती हुई मानवता का प्रतीक बनती रहती है। हमारे सिंधी समाज के जाने माने लेखक-संपादक-पत्रकार स्व: श्री जीवतराम सेतपाल जी, 'प्रोत्साहन' के संपादकीय में इसके बारे में लिखा था-लघुकथा आनंद की बौछार है, बरसात नहीं, होंटों की मुस्कान है, हंसी या ठहाका नहीं, यह मधुर गुदगुदी है, खुजली नहीं। लघुकथा फुलझड़ी है बम नहीं।'

अपनी अपनी राय है अपनी अपनी अभिव्यक्ति, जो शब्दों में व्यक्त अपनी लघुता के महत्व को दर्शाती है। श्री हरिशवंश राय बच्चन जी के शब्दों में - लघुकथा का अपना महत्व है। सूरज को तिनका बनने के लिए कहा जाय, तो कितनी बड़ी मुसीबत उसके सामने आकर खड़ी होंगी। सच ही तो है-'लघुकथा' कलेश्वर में लघु होने के बावजूद भी रचनात्मक अस्तित्व से मानव मन के मर्म को छूकर अपना एक स्थायी प्रभाव अपने पाठक पर

छोड़ती है। शायद इसलिए कि जन-जीवन की रोज़मर्रा के जीवन के, आस-पास घटित घटनाओं को थोड़े शब्दों में ज़ाहिर करने में अपनी दक्षता उसे हासिल हो गई है. अपने लघु आकार में कथा के तत्व की मौजूदगी की महत्वता ज़ाहिर कर पाना उसकी ज़रूरत है, जो वह इशारे से बयान कर देती है, परिभाषित नहीं करती। लघुकथा 'जहन्नुम' अपने लघु आकार में एक विषय को लेकर सामने आई है जहाँ स्त्री किरदार माला, जब सीड़ियाँ चढ़कर चाल में अपने घर के सामने खड़ी होकर कुंडी पर लगा ताला खोलने की कोशिश करती है, तो वहाँ खड़ी पड़ोसन ने पूछ लिया-सुबह सुबह कहाँ से आ रही हो माला? ''जहन्नुम से !'' खीजते हुए माला ने उत्तर दिया। ''अरे जहन्नुम तो ऊपर होता है, जहां लोग मरने के बाद जाते हैं ...तू..! '' ''वो भी तो जहन्नुम ही है, हर रात जहां ज़िंदगी मुझे जीती है, और मैं मरती हूँ..!''अब वह ताला खोल कर जन्नत में पाँव धर चुकी थी।

लघुकथा हर साहित्य के क्षेत्र में कई पड़ावों से गुजर कर अपना अधिकृत स्थान पाने में सफल हो रही है. विषय भी अनंत है और मानव-जीवन इसकी विराटता. रचना वही है जो हमारे साथ-साथ यात्रा करे. साहित्य तो बहता हुआ पानी है जो अपना रास्ता खुद तय करता है. उसीके बहाव में मानव मन के धरातल में सिमटी भावनाओं की सीपें उथल-पुथल से जूझती हुई सतह पर आ जाती हैं। रचनाकार की संवेदना अभिव्यक्ति में जान फूंक देती है। लघुकथा-लघु का अर्थ दर्शाते हुए अपना अर्थ विस्तार अनंत की ओर ले जाती हैं। जीवन के छोटे छोटे जिये जाने वाले पल ही लघुकथा है. शायद यहीं हम लघुकथा का निर्माण करते है, जिसकी व्याख्यान की सीमा असीमित हैं। हद और सरहद के बीच का फासला तय करना ही इसकी लघुता है। सच तो यह है कि लघुकथा का लघुपन ही उसका कथा तत्व है।

एक मशहूर आलोचक का कहना है, जैसे कहानी को उपन्यास का छोटा स्वरूप नहीं कह सकते उसी तरह लघुकथा को कहानी का छोटा अश नहीं माना जा सकता है। कहानी कहानी है और लघुकथा लघुकथा। अगर कहानी शोला है तो लघुकथा चिंगारी है, पर है विचारों की लेनदेन जो भाषा द्वारा आदमी और समाज के विकास को कायम रखती है।

मेरी ये लघुथाएं भी जीवन के हर मोड़ पर किसी न किसी किरदार की मनोभावाभिव्यक्ति है। ये रस्ते में पांवों में चुभते कंकर नहीं, कुछ सीप से

निकले मोती है, जो अपनी अपनी आभा कलाकार की कलाकृति की तरह स्पष्ट रूप में सामने ले आती है. वह पाठकों तक पहुंचती है, उनके हृदय को टटोल कर उनके मनोभावों को झंझोरती है, फिर चाहे उसमें चुटकीलापन ही क्यों न हो, चुलबुलापन हो या आत्मीयता, जीवन की हर शैली को अपनी लघुता में प्रदर्शित करने-कराने की क्षमता रखती हो- जहाँ पर लघुकथाकार दृश्य न रहकर पात्रों के रूप में अपनी बात कर पाने में समर्थ हो.

मैंने जो अपने आस-पास देखा, सुना, महसूस किया उन विचारों को भाषा में बुन लिया। ये आपकी, मेरी और हम सबकी कहानी की लघुता है, जो इस लंबे जीवन का यथार्थ है। कहना सुनना और बहुत बाक़ी है, समय पर है कम !

आपकी अपनी

देवी नागरानी
dnangrani@gmail.com

जैसा देखा वैसा लिखा..!

लघुकथा संग्रह प्रकाशन सामाजिक दायित्वों का निष्काम निर्वाहन है। एक विशाल पुस्तक विमोचन समारोह। किशोर कुमारजी की जन्मस्थली खण्डवा में उनकी स्मृति में बने गौरीकुंज विशाल सभाग्रह में हुआ्। हाल में सीट ही नहीं हर जगह श्रोता बैठे थे। हाल के बाहर व सड़क पर कुर्सी लगाकर लोग बैठे थे, तो कुछ सड़क तक खड़े थे। कुछ अपने वाहनों पर बैठ कर निहार रहे थे। महापौर विधायक जिलाध्यक्ष के अलावा देश के सुप्रसिद्ध कवि हरिओम पवार व अंजुम रेहबर आपा ने पुस्तक विमोचन के साथ ही अपनी रचनाओं से तीन घंटे जनता को मंत्रमुग्ध कर दिया। विशाल व अद्वितीय समारोह था।

प्रसंग था श्री अलोक सेठी की पुस्तक 'संडे का फण्डा' का लोकार्पण। लेखक ने अपने उद्बोधन में कहा- कि हर शहर की अपनी पहचान होती है। कोई शहर कारखानों के नाम से जाना जाता है। कोई शहर मिठाई के नाम से जाना जाता है मेरा खण्डवा शहर साहित्यकार दादा पं० रामनारायणजी उपाध्याय (पद्मश्री एवं साहित्यवाचस्पति) के नाम से जाना जाता है। मैं एक कच्चा-पक्का लेख पदमश्री एवं साहित्यवाचस्पति दादा पं. रामनारायणजी उपाध्याय को दिखाने पहुँचा। दादा जो खण्डवा शहर की पहचान है। उन्होंने कहा-''लिखना आपका व्यक्तिगत शौक है उसे जन-जन तक पहुँचाना आपका सामाजिक दायित्व है।'' उन्ही से प्रेरणा लेकर मैं आज तक लिख रहा हूँ। उल्लेखनीय है कि संडे के फंडे के नाम से श्री अलोक सेठी भारत एवं देश विदेश में प्रति सप्ताह ६५ हजार लोगों को संडे के फंडे के अंतर्गत एसएमएस करते हैं और प्रति माह एक लाख सामाजिक दायित्व के तहत खर्च करते हैं। जिससे प्रेरणा लेकर कई लोगों ने अपना व्यक्तित्व कृतित्व व जीवन भी सुधारा है।

'और गंगा बहती रही' नामक लघुकथा संग्रह भी एक ऐसा ही दायित्व का निर्वाहन है। अपने आस-पास घटने वाली सत्य घटनाओं को लघुकथाओं के माध्यम से देवी नागरानी ने अपने संग्रह के रूप में जन-जन तक पहुँचाने का बीड़ा उठाया है। नागरानी जी की मातृ भाषा सिंधी होते हुए भी हिन्दी के प्रति उनकी बहूमूल्य सेवाएं हैं। वो दोनो भाषाओं पर समान अधिकार रखती हैं। उन्होंने अपनी ही नहीं देश के ख्यातनाम साहित्यकारों की रचनाओं का सिंधी में भी अनुवाद किया है। निश्चित यह कोई धन कमाने का साधन नहीं है। यह सामाजिक दायित्व के निर्वाहन का काम भर है भारत से अमेरिका में रहने के बाद भी वे अपनी मातृ भाषा सिंधी एवं् भारतीय भाषा हिन्दी के विकास उन्नयन के लिए सदैव चिन्तित रहती हैं, रचना धर्मिता निभाते रहती है। इस लिए उनका कार्य बहुत ही स्तुत्य हो चला है।

उपन्यास सौ से पांच सौ पृष्ठ का होता है, कहानी दो से दस पृष्ठ की होती है तो लघु कथा मात्र दो चार लाईन से एक देढ़ पेज तक की ही होती है। लघु कथा में गहराई भी होती है विशलता भी होती है। इसी लिए तो कहा गया है - देखने में छोटी लागे घाव करे गंभीर।

लघुकथाओं के माध्यम से हमारे ग्रंथो में कई दृष्टांत दिए गए हैं। गागर में सागर पाना हो तो लघुकथाएं काफी होती है। संसार में सात ही सागर है, परन्तु नागरानी जी ने तो सात गागर नही, ८२ गागरें सागर से भरकर आपके सम्मुख रखी हैं. सच्चाई के साथ ही इनमें आपको हास्य, गंभीरता, प्रेरणा, संवेदना सब कुछ मिलेगा। इनको पढने के बाद कहीं भी समय की बर्बादी प्रतीत नहीं होगी। लम्बे उपन्यास पढ़ने के बाद कई बार ऐसा लगता है कि खोदा पहाड़ निकली चुहिया। जबकि छोटी- छोटी गागर में आप सागर पायेंगे। सागर से ही तो नव रत्न मिले थे।

छोटी- छोटी लाखों घटनाएँ जीवन में घटती है पर नागरानी जी ने हंस की तरह अपना दायित्व निभाया है। जिस तरह हंस पानी-पानी छोड़कर दूध-दूध पी लेता है, ठीक उसी तरह नागरानी जी ने अच्छी-अच्छी घटनाओं पर घटित अच्छी- अच्छी लघुकथाएं आपके लिए इस संग्रह में संजोकर रखी है।

देवीजी की रचनाएँ क्यों अच्छी लगीं. उनकी रचनाएँ न सिर्फ मैंने पढ़ी बलिक पुस्तक समीक्ष व कई पाठको को भी पढ़ाई जिनके मतानुसार मैं इस निष्कर्ष पर पहुॅचा हूँ कि - इनकी राचनाओं को पढ़ने में कोई बहुमूल्य

समय नहीं व्यर्थ जाता। चार छे लाईन पढ़ो १० या १५ सेकंड मात्र की छोटी रचना बड़ा असर छोड़ जाती है।

नागरानी जी की लघुकथाएं मिथ्या परख या मनघडंत नहीं है यथार्थवादी है। ये प्रेरणा भी देती है जैसे-दाव पर द्रोपदी, भूख और भीख मार्मिक लगेगी। 'गंगा निरंतर बहती है' लघुकथा दर्द देती है। उससे गृहणियों को सीख लेनी चाहिए। लघुकथा देवरानी-जेठानी में स्वयं पर भी बहुत मीठा व्यंग्य किया है। 'गुरु दक्षिणा' में अंगुठा गवांने को आपने मधुर अंदाज में व्यक्त किया है। 'असल शिकारी' को पढ़ कर याद आता है -'काग के भाग बड़े सजनी हरि हाथ से ले गयो माखन मिश्री'। बच्चा सेर है तो कौवा सवा सेर। रिटर्न गिफ्ट- मीठे बोल के बदले मीठे बोल। जैसे को तैसा, सच्चा सौदा, दावत-सामने वाले से जैसे लाभ की अपेक्षा रहती है वैसे ही उसे दावत दी जाती है इसमें बड़ा कटू सत्य है। 'गृहप्रवेश व शर्तो पर शादी' आज के युग की व्यथा कथा है। इससे आज हर कोई डरा हुआ है। शादी मुश्किल है तो तलाक आसान है। मैं क्या कहती, घुटने बहरे हैं, मसकरियाँ, फटाफट जैसी अनेक क्षणिका जैसी लधुकथाएं असरकारक है। साफ-खिड़की, ज़रुर सत्यता बयान करेगी हंसायेगी भी। बातों से बू आये, ईमान की दौलत, दाने -दाने पर लिखा खाने वाले का नाम, कथनी और करनी, देश का भविष्य, गरीबों की व्यथा-कथा का भी कई रचनाओं में आपने सजीव वर्णन किया है। 'खूबसूरत' नामक रचना में कड़ा प्रहार है। नुकसान की भरपाई - सरकार राउण्ड फीगर में किराया वसूली करती है तो जनता गरीब मेहनतकश का रुपया दो रुपया डुबाने में विश्वास करती है। गरीब से चिल्लर की वापसी ली जाती है जो कि नोट से भी मंहगी है। प्रवचन छोटीसी रचना है पर आजकल के प्रवचनकारों पर बड़ा प्रहार है।

इनकी उपलब्धियों पर नज़र डाले तो आँखें चैधियां उठेगी। हर क्षेत्र में कलम चलाई है और हर जगह सराहना पाई है। भारत, अमेरिका आदि जगह रहने के बाद हिन्दी-उर्दू-सिंधी व अनेक भाषाओं एवं अनेक विधाओं में काम किया है। हिन्दी से सिंधी में अनुवाद कर सिंधी के विकास एवं समृद्धि में बहूमूल्य योगदान दिया है तो सिंधी से हिन्दी में अनुवाद कर हिन्दी के लिए भी बड़ा काम किया है। देवीजी के भाषाज्ञान पर निगाह डाले तो हिन्दी, सिंधी, गुरमुखी, उर्दू, तेलगू , मराठी, अॅग्रेंजी का होना बहुत बड़ी बात है। विनोबा भावे के बाद सर्वाधिक भाषाज्ञान मुझे देवीजी का ही

दिखता है । निःस्वार्थ काम करने के लिए मुझे इन पर अगाध श्रद्धा है ।

मैंने इन्हे एक सम्मान हेतु आवेदन भेजने का निवेदन किया तो उन्होंने बताया ये सम्मान तो मुझे कई वर्ष पूर्व ही मिल चुके हैं. तब मेरी ख़ुशी कई गुना बढ़ गई । बहुत सम्मान मिले हैं और बहुत पाने शेष हैं । मेरी शुभकामनाएँ हैं कि वे और लिखें और लिखते-लिखते जीवन का शतक पूरा करे । परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि उनके भावी जीवन में न कोई कमी हो न कोई गमी हो । सफलता विकास और उल्लास ही उल्लास हो । वे ऐसी उपलब्धियाँ हासिल करें कि सदियों तक उनका नाम साहित्य के क्षेत्र में आदर से लिया जावे । मेरी शुभकामनाएँ हैं यह पुस्तक कई देशो में लोकप्रिय हो और नागरानी जी की ख्याति शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिन प्रतिदिन बढ़ती रहे ।

समीक्षक : **हेमंत उपाध्याय**
लघुकथाकार एवं व्यंग्यकार कवि एवं ललित निबंधकार,
गणगौर साधना केन्द्र, साहित्य कुटीर,
पं.रामनारायणजी उपाध्याय वार्ड,
खण्डवा, म. प्र. ४५०००१.
फोन-०९४२५०८६२४६/०९४२४९४९८३९

कल्पित कल्पनाओं पर नहीं, बल्कि यथार्थ के अनुभव की मजबूत ज़मीन पर आधारित है यह लघुकथा संग्रह

लघु कथाओं का इतिहास समृद्धशाली है। ये लघुकथाएं अपने नाम के बिल्कुल विपरित अर्थ प्रदान करती हैं। वैसे ही जैसे कविवर रहीम के दोहों के लिये कहा जाता है - 'देखन में छोटे लगे घाव करें गंभीर', अर्थात् लघु कथाएँ होती तो सूक्ष्म है किन्तु अर्थ स्थूल प्रदान करती हैं। छोटी-छोटी ये कथाएँ बड़ी ही मर्मस्पर्शी होती हैं। लघुकथा लेखक के हृदय धनुष से निकले विचारों के वे सूक्ष्म बाण है, जो हमारी मृत पड़ी संवेदनाओं, भावनाओं और हमारी वेदनाओं के सूखे आकाश को भेंदकर अनंत काल तक मानवीय भावनाओं का रसपान कराते रहते हैं।

मानव और सामाजिक साहित्य के समदर्शी आलोचक यह कहते है कि मानवीय संवेदनायें मृत प्रायः हो गई है, भावनाओं की सरिता सूख-सी गई है किन्तु वास्तविकता यह है कि मानव मन-मानस आज भी संवेदना व भावना से भरा पड़ा है। जिस प्रकार से पृथ्वी के अतंस में जल की अविरल धारा प्रवाह मान है वे पृथ्वी की उपरी सतह पर हमें दिखाई नहीं देती जब तक हम पृथ्वी की मोटी परत को हटाकर उसके हृदय स्थल में नहीं झाँकते, पहाडों के झरने बिना वर्षा के झरझरित नहीं होते पावस ऋतु ही उनमें जाण डालती है और वे झरझरित होकर अपने उद्गम से बह निकलते है। ऐसे ही मानव हृदय पर जमी ज़मीन की मोटी परत को कुरेतने वाला साहित्य आज कम ही देखने या पढ़ने को मिलता है। मानव हृदय को झकझोरने वाला साहित्य आज सृजित नहीं हो रहा है यह कहना भी ठीक नहीं है। प्राचीन समय में मीरा ने जिस विरह के समुद्र में जैसी लहरे उत्पन्न की थी। आधुनिक युग की मीरा कही जाने वाली महादेवी वर्मा ने भी अपने अदृश्य प्रीतम को अवलम्बन मानकर उन्हीं तरंगों को पुर्नजीवित कर दिया है एवं पंडित

रामनारायण उपाध्याय का साहित्य भी लोक संस्कृति, मूल्यों व साहित्य रचना के असल उद्देश्यों के झरने बहाने में सक्षम है। वर्तमान में लेखिका उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' जो मध्यमवर्गीय परिवारों के बिखरते तथा घर के मुखिया के प्रति असंवेदनशील होते परिवारों की व्यथा कहती है ऐसे ही पंडित रामनारायण उपाध्याय की रचनाएँ 'मेरा गाँव मिल क्यों नहीं रहा', 'आदमी को आदमी की तरह जीने दो', 'हम किसके लिए लिखे', 'राम की वन यात्रा अब भी जारी है', 'सीता मांग रही है न्याय' आदि कुछ ऐसी ही रचनाएँ हैं जो मानवीय हृदय में निष्क्रिय पड़ी भावनाओं और रचनाकार के हृदय पर सीधे चोट करती है।

वर्तमान समय में लेखिका देवी नागरानी जो भारत और अमेरिका के वातावरण को सतत् आत्मसात कर रही है, जिनका यह लघुकथाओं का संग्रह भी अपने साहित्यिक धर्म के असल उद्देश्य 'आत्म सुखाय' को पूर्ण करता है। लघु कथाओं का यह संस्करण एक नवीन दृष्टि को देनेवाला है, छोटी-छोटी लघुकथाओं का अंत एक ऐसे प्रश्न चिन्ह के साथ बंद हुआ है जो आपके हृदय में जाकर खुलता है एक ऐसा विराम, जो आपकी जिज्ञासाओं को शांत नहीं करता बल्कि उन्हें जागृत करता है। ये लघु कथायें किसी निष्कर्ष को प्रस्तुत नहीं करती बल्कि पाठकों के हृदय को उभारने का काम करती है और सरल शब्दों में लिखूं तो हमारी संवेदनाओं के सूखे पड़े घावों पर चोंट कर जख्मों को फिर से हरा कर देती है- जैसे-गंगा निरंतर बहती है इस शीर्षक की लघुकथा के कुछ अंश देखिये रामप्रसाद नौ साल में इन सारे कामों का आदि हो चुका था। ... जिंदगी का जाम उसके हिस्से में ऐसा कुछ ले आया कि वह उसे न पी सका न निगल सका, न थूक सका, नीलकण्ठ सा हो गया था मानो ...। उसके भीतर कहीं न कहीं कुछ न कुछ नहीं, बहुत कुछ टूटता रहा बे आवाज़। ... वह, नौकरी की तलाश में थक हारकर निकम्मा होकर अब घर के कामों में पत्नी का हाथ बंटवाने का प्रयास करता है। मरता नहीं तो क्या करता ?... पत्नी कहती है, पिताजी से पैसे भी तो लाने हैं न घर खर्च के लिए। 'मैं नौकरी की तलाश में आज फिर जाऊँगा शायद काम हो जाये।' पत्नी फिर कहती है उसी भरोसे पर तो हर माह पिताजी के सामने हाथ फैलाने जाती हूँ। आपसे अधिक अब मुझे शर्म आने लगी है। डूब मरने को दिल करता है ...।। रामप्रसाद ने एक दिन पत्नी से कहा-भाग्यवान मैं गंगा नहाकर आता हूँ लौटने वाला आज तक नहीं

लौटा, तन मन मस्तिष्क के समस्त बोझ के साथ विलीन हो गया शायद! पत्नी आज भी चित्कार उठती है कि उसके राम उसे कैसा प्रसाद देकर गये हैं। आँखों से निरंतर गंगा बहती है। ''

यह छोटी-सी लघु कथा हमारे मन के समस्त निर्णय हमारे सोच को एकदम पलट देती है, यह लघुकथा दीर्घ समय तक हमें सोचने पर मजबूर कर देती है। मन मस्तिष्क के सारे परिदृश्य बदल देती है, ऐसे ही लघु कथा 'दोहराव' का यह अंश देखिये...। ''अपने पिता दीनानाथ से अपने दिल का दर्द बाँटते हुए रेखा कहती रही -'' पिताजी मेरी बेटी बड़ी हो गई है। आपकी नातिन प्यार में इतनी पागल हो गई कि अपने पुराने रिश्ते, मेरी ममता को, घर की मर्यादाओं के सारे बंधन तोड़कर चैखट लांघकर बस चली गई ''... यह बात समझ नहीं आई कि दीनानाथ जी अपनी बेटी के ताजे जख्म पर मरहम रख रहे थे या अपने पुराने जख्म को सहला रहे थे, इसी प्रकार जहन्नुम लघुकथा का यह अंश देखिये 'पड़ोसन ने माला से पूछ लिया कि सुबह, सुबह कहाँ से आ रही हो ?' जहन्नुम से, माला ने उत्तर दिया। हर रात जहाँ जिंदगी मुझे जीती है और मैं मरती हूँ ...। अब वह ताला खोलकर जन्नत अपने घर में पाँव धर चुकी थी। 'दम घुटता है', लघुकथा में बच्चों द्वारा माँ-बाप की उपेक्षा और उससे उपजे दर्द को लेखिका ने इन दो पंक्तियों में उभार दिया है - '' प्रौढ़ अवस्था की दहलीज पर वह हांफने लगी। उसके लिए भी कहाँ आसान था। हर बार उखड़ना और हर बार बस जाना।''

इसी प्रकार 'गृहप्रवेश' लघु कथा का यह अंश-गुमसुम अपने पिता की ओर देखता रहा... और इतना ही कह पाया पिताजी ...। अरे, चुपकर अभी छः महिने भी नहीं हुये, एक से जान छुड़ा भी नहीं पाए है कि तू दूसरी ले आया... 'दस दिन में तलाक की अर्जी दी और ५० लाख की मांग।'...तुम दोनों की अनबन मुझे कहीं का नहीं छोड़ेगी। घर में बसना चाहती हो तो लिखकर देना होगा। ...। मुझे घर में अपने बहू चाहिये, कोई लुटेरन नहीं।'' यह लघुकथा समाज के चरमराते ढांचे पर कई प्रश्न खड़ी करती है और हर प्रश्न का उत्तर हम से मांगती है। निश्चित ही यह लघुकथा संग्रह समाज की वर्तमान सोच तथा कथित आधुनिकता नष्ट होते हमारे जीवन मूल्य पर पलट वार करती है, लेखिका ने प्रत्येक लघु कथा का अंत ऐसे स्थान पर जाकर किया है, जहाँ से एक नई लघुकथा का प्रारंभ हमारे मन मस्तिष्क में होने

लगता है । लेखिका की ये लघु कथाएं कपोल कल्पित कल्पनाओं पर आधारित नहीं है, बल्कि अनुभव व यथार्थ की मज़बूत जमीन पर आधारित है इसीलिये यह समाज को आईना दिखाने का दम भरतीं हैं ।

इस संग्रह के लिए मेरी शुभकामनायें हैं ।

वीरेन्द्र काजवे

शिक्षक,पाठक, एवं समीक्षक

पताः ३५१, गंगा निकेतन, उज्जैन रोड़ देवास म।प्र।

फ़ोनः ९४२५९५०६५८

१. अख़बारवाला मूर्ति

हाँ यह वही तो है जो ३५ साल पहले मेरे नये घर का दरवाजा खटखटाकर, शिष्टाचार के साथ सवाली आँखों से खड़ा था। दरवाजा खोलते हुए मैंने भी सवाली आँखों से बिना कुछ कहे पूछा था।

मैडम मैं पूरी कॉलोनी के लिये अख़बार लाता हूँ। आप को भी चाहिए तो बता दीजिए।

अरे बहुत अच्छा किया ! कल इतवार है और हर इतवार को हमारी सिंधी अख़बार 'हिंदवासी' आती है जो मुझे जरूर दीजिएगा।

'अच्छा' कहकर वह यह कहते हुए सीड़ियाँ उतरने लगा पाँच रुपए का है मैडम और वह अपनी तेज़ रफ़्तार से वह दो मंज़िल उतर गया।

यह १९७२ की बात है, अरसे के बाद लगा जैसे बात आई गई हो गई। हर दिन, हर घर को, कई साल बीतने के बाद भी बिना नागे वह अख़बार पहुंचाता रहा और मैं पढ़ती रही हूँ, दूर दूर तक की ख़बरें। शायद अख़बार न होता तो हम कितने अनजान रह जाते समाचारों से। इस ज़माने की भागती जिंदगी से उतना बेहतर न जुड़ पाते।

अपने आस-पास के हाल चाल से बखूबी वाकिफ़ कराती है यह अख़बार। पिछले दो साल में लगातार अपनी रसोई घर की खिड़की से सुबह सात बजे चाय बनाते हए देखती हूँ 'मूर्ति' को, यही नाम है उसका। बेटी सी।ए।- करके बिदा हो गई है, बेटा बैंक में नौकरी करता है, और मूर्ति साइकल पर अख़बार के बंडल लादे, उसे चलता है, एक घर से दूसरे घर में पहुंचाता है, जाने दिन में कितनी सीड़िया चढ़ता उतरता है। एक बात है- अब उसकी रफ़्तार पहले सी नहीं। एक टाँग भी थोड़ी लड़खड़ाने लगी है। ३५ साल कोई छोटा अरसा तो नहीं, मशीन के पुर्ज़े भी ढीले पढ़ जाते है, बदले जाते है, पर इंसानी मशीन उफ़ ! एक अनचाही पीड़ा की लहर सिहरन

बन कर दिल में उतरती है और पूरे वेग से शरीर में फैल जाती है। वही 'मूर्ति' अब अख़बार के साथ, खुद को ढोने का आदी हो गया है। थोड़ी देर से ही, पर अख़बार पहुंचाता ज़रूर है, न होने पर दरवाजे की कुण्डी में टाँग जाता है।

जिस दौर से वह अख़बार वाला गुज़रा है, वह दौर हमने भी उन अख़बारों को पढ़ते-पढ़ते गुज़ारा है। पर पिछले दो साल से उस इन्सान को, उसके चेहरे की जर्जराती लकीरों को, उसकी सुस्त चाल को देखती हूँ, पढ़ती हूँ, तो लगता है यह तो अपनी आप बीती है। आईने के सामने रूबरू होते हुए भी हम कहाँ ख़ुद को देख पाते हैं, पहचान पाते हैं? बस वक़्त मुस्कुराता रहता है- हमारी जवानी को जाते हुए और बुढ़ापे को आते हुए देखकर।

और मैं वहीं चाय का कप हाथ में लेकर सोचती हूँ, क्या यही जिंदगी है? हाँ अजब है यह जिंदगी, खुद तो जीती है, पर वो हुनर उस अख़बरवाले मूर्ति को न सिखा पाई। उससे आज भी बोझ उठवाती है, उसकी कंपकपाते हड्डियों पर ज़्यादा बोझ डलवाती है, ऊंचे घरों की ऊंची मंज़िलों तक का सफ़र तय करवाती है, और मेरी खिड़की के सामने वाली सीड़ी से धीरे-धीरे उतरता हुआ अख़बार वाला मूर्ति दिखाई देता है, जिसकी जिंदगी को हम शायद पल दो पल रुककर अख़बार के पन्नों की तरह कभी पढ़ न पाए। मैने पीछे पलटते हुए देखा है, सच को महसूस किया है, इन अख़बारों को रद्दी में जाते हुए देखकर अजब लगता है, आदमी वही पुराना फिर भी रोज़ नया अख़बार ले आता है।

२. समय की दरकार

समय की क़द्र वो ही जानते हैं जो समय की पाबंदियों का पालन करते हैं और उस दौर में अपना लक्ष्य भी हासिल करते हैं। समय के सैलाब में बहते हुए हम कभी दो पल रुककर ये नहीं सोचते कि यह समय भी रेत की तरह हमारी बंद मुट्ठियों से निकला जा रहा है । जाना कहाँ है, जा कहाँ रहे हैं? शायद वक़्त की धाराओं के साथ हम बेमक्सद ही रवां हो रहे हैं ।

सब कुछ करते रहते हैं, खाने-पीने, मौज-मस्ती की महफ़िलों का हिस्सा बनने के लिए हमारे पास समय है, पर जो काम ख़ुद की पहचान पाने के लिए करना है, उसके लिए समय नहीं! उस काम को न करने के बहाने सबब बन कर सामने आते हैं। अक्सर कहते हैं और सुनते हैं- समय ही नहीं मिलता । सच है समय को कौन बांध पाया है जो हम बांध पाएंगे। पर उसी समय के चलते चक्रव्यूह से बाहर निकल कर एक और पहचान पा लेनी है जो सच का मापदंड है।

इस समय के सिलसिले में एक सुना हुआ किस्सा याद आया- एक बच्चे ने एक दिन अपने पिता से जो काम से थका हारा लौटा था पूछा-

पिताजी आपको एक घंटा काम करने के लिए कितने डॉलर मिलते हैं? अजीब सवाल में न उलझ कर पिता ने कहा पच्चीस डॉलर।

बेटे ने पिता से जिद की कि वह उसे दस डालर दे । पिता ने दिए तो सही पर वह सोचने लगा - कभी न मांगने वाला बेटा आज यह कैसी फरमाइश कर बैठा है ? कुछ सोचकर वह बेटे के कमरे में गया तो देखा तो वह कुछ और डॉलर उन दिए हुए दस डालर में जोड़ रहा था।

''क्या कर रहे हो ? क्यों चाहिए तुम्हें इतने पैसे ?'' पिता ने जानना चाहा। बेटे ने २५ डालर पिता की ओर बढ़ाते हुए कहा ''पिताजी क्या कल आप ऑफ़िस से जल्दी आकर मेरे साथ खाना खा सकते हैं, ताकि हम एक

घंटा साथ-साथ बिताएं, यह २५ मैंने उसीके लिए जमा किये हैं।''

समय का मूल्यांकन तो उस मासूमियत ने लगाया जिसे समय की दरकार थी, दौलत की नहीं !

३. दो गज़ ज़मीन चाहिए

सुधा अपनी सहेलियों के साथ कार के हिचकोलों का आनंद लेती हुई खुशनुमा माहौल का भरपूर आनंद लुटा रही थी। अक्टूबर का महीना, कार के शीशे बंद, दायें बाएँ शिकागो की हरियाली अपने आप को जैसे इन्द्रधनुषी रंगों के फूलों का पैरहन पहना रही हो।

जान लेवा सुन्दरता में असुंदर कोई भी वस्तु खटक जाती है; इसका अहसास सुधा को तब हुआ जब उसकी सहेली ने रास्ते में एक ढाबे पर चाय के लिए कार रोकी। चाय की चुस्की लेते हुए उस कारवाली सहेली ने अपने बालों को हवा में खुला छोड़ते हुए चाय के ज़ायके में कुछ शोख़ी घोलते हुए कहा -'सुधा, अपनी कार का होना कितना जरूरी है, जब चाहो, जहाँ चाहो, आनंद बटोरने चले जाओ। यह एक ज़रूरत सी बन गई है। बिना उसके कहाँ बेपर परिंदे उड़ पाते हैं?'

तीर निशाने पर बैठा था। सुधा नज़र-अंदाज़ न कर पाई, अपनी औक़ात वह जानती थी और बिना किसी मिलावट के अपनी मुस्कान के साथ सच को स्वीकारते हुए कहा, ''मैं ज़ियादा पैसे वाली तो नहीं, पर मुझे अपनी ज़रूरतों का और दायरों का अहसास है। उन्हीं कम ज़रूरतों ने मुझे सिखाया है कि मुझे च़ाहिये फक़त दो गज़ ज़मीन !''

४. न्यायाधीश

हर रोज़ इक नया सितारा रौशन होता है जब-जब भी ज्ञान-अज्ञान में जंग छिड़ती है । आज भी ऐसा ही कुछ हुआ । पिकनिक का माहौल पूरे उरूज़ पर था। हमारी कंपनी के स्टाफ ने हर तरह से बेहतरीन व्यवस्था की थी, यह जानते हुए कि उसमें शहर के जाने-माने लोग शामिल होंगे ।

एक नामी वकील भी अपनी पत्नि सहित जैसे वहाँ पहुँचा तो सभी का ध्यान उसकी पहनी हुई टी-शर्ट की ओर गया जिस पर लिखा था...।

A good lawyer must know law

A lawful lawyer must know many judges

तो आप बहुत सारे judges को जानते हैं? एक साथी ने मुस्कराते हुए कटाक्ष किया ।

बहुत तो नहीं, पर उनमें से कुछ को जानता हूँ । वकील साहब ने ठहाका मारते हुए कहा और अपनी पत्नी की ओर देखकर सवाली नज़रों से कहा,'तुम तो मुझे जानती हो, तुम्हारा क्या कहना है?'

पत्नि सवाल को नज़र-अंदाज़ न कर पाई और तर्क से बचने के लिए कहा - उन सब judges के ऊपर एक judge और है जो हम सब को जानता है ।''

ଔଔ

५. काजू किशमिश

अरे अब आवाज़ देना बंद भी करो और शरारतें तो बिलकुल भी बँद करो। कहते हुए सुधाजी ने अपनी बालकनी की चौखट की सरहद पर लटके सुनहरी पिंजरे की ओर लपकर उसे उतारा और किचिन की ओर बढ़ी।

मैं किचिन में लगी डाइनिंग टेबल पर बैठी उनके हाथों की बनी चाय की चुस्कियाँ लेती रही थी। उनकी ओर मुड़ते हुए पूछा, आप किस के साथ गुफ़्तार किये जा रही हैं सुधाजी?

ये हैं काजू और किशमिश ! मेरे घर की रौनक। आज नहलाने में थोड़ी देर क्या हो गई है, दोनों बेचैन होकर शोर किये जा रहे हैं। कहते हुए उन्होंने पिंजरे को लाकर सिंक में रखा और शावर पाईप से उन्हें नहलाने लगी। जब वह इस काम से फारिग हुईं तो उनके खाने का बंदोबस्त करने लगी। पिंजरे के दोनों ओर आमने-सामने दो कटोरियों में Bird Food भरते हुए कहने लगी...

"खाने के मामले में दोनों एक दूजे को अपनी परिधि में दख़्ल नहीं देने देते। कोई एक दूजे की हद में जाकर तो दिखाये...बस शुरू हो जाते हैं। दोनों लफंगे होते जा रहे हैं..." मेरी ओर मुख़ातिब होकर सुधा जी ने मुस्कराते हुए कहा।

मैंने अपनी सोच का समाधान पाने के लिये उनसे पूछा सुधाजी आप कैसे पहचानती हैं कि कौन काजू है और कौन किशमिश? मेरी उकीरता को राहत देने वाले अंदाज में मुझे पिंजरे के पास बुलाते हुए कहा... ये जो नीली चोंच वाला है वो है काजू, ओर सफ़ेद चोंच वाली है किशमिश !

अगला सवाल नर मादा की पहचान के बारे में पूछने से पहले मैं सतर्क हो गई। चोंच वाला नर, चोंच वाली मादा ! Simple !

'आप वहीं खड़े रहिये सुधाजी।' कहते हुए मैंने झट से उनकी दो

तीन तस्वीरें ले लीं। लीजिये आप भी मिलिये उन प्यार के पँछियों से जो डाँट डपट की भाषा तो बिलकुल भी नहीं जानते।। जी हा ये दो प्यार के पँछी हमारी प्रिय सुधा ओम ढींगरा जी का प्यार पाकर उनके आंगन की शोभा बढ़ा रहे हैं।

६. अहसास

मैं केटी को ले जा सकती हूँ ?

सधी हुई आवाज़ कानों पर पड़ते ही सर उठाया। देखा सामने सुंदर सी, तीखे नाक नक्श वाली ११-१२ साल की लड़की खड़ी थी।

आपका नाम ?

मैं टीना हूँ, केटी की बहन, उसे लेने आई हूँ। संक्षिप्त उत्तर के बाद वह चुप रही।

हर रोज़ तो उसकी नानी उसे लेने आती है।

वो तो ठीक है, पर अचानक मेरे पिता का फ़ोन आया कि मुझे केटी को स्कूल से पिकअप करना है।

आपकी नानी कहाँ है और वो क्यों नहीं आई ?

वो मेरी नहीं, केटी की नानी है। आज क्यों नहीं आई मुझे नहीं मालूम।

जवाब सुनकर मेरे माथे पर सिलवटें पड़ने लगीं। ये कैसा रिश्ता है ? वो केटी की नानी है पर टीना की नहीं !

तुम केटी को कहाँ ले जाओगी ?

इसके मम्मी-पापा के घर। टीना का छोटा-सा उत्तर पाकर मैं फिर उलझ गई।

और तुम कहाँ जाओगी?

अपने घर। सरलता से उसने मुस्कराकर जवाब दिया।

तुम वहाँ क्यों नहीं जाओगी ?

''क्योंकि मैं अपनी मम्मी के पास रहती हूँ, और मेरे पापा केटी की मम्मी के साथ।''

ऐसे जवाब सुनकर कौन कहता है भावनाओं को ठेस नहीं लगती ?

कौन कहता है रिश्तों की महत्त्वता नही हैं। पर जो रिश्ते बेमतलब के हों, उनका न होना ही बेहत्तर है। मैं अपनी सोच की दुनिया में खोई थी, इस बात से बेख़बर कि - केटी और टीना अभी तक वहीं मौजूद हैं।

मैम क्या मैं केटी को ले जा सकती हूँ ? टीना की इस आवाज़ ने मुझे जगा दिया।

हाँ ! रजिस्टर में साइन करके उसे ले जा सकती हो।

...और मेरे आँखों के सामने स्वार्थ के सिंहासन पर बैठे आदम और मासूमियत से मुस्कान छीनने वाले अपराधी चेहरे साफ़-साफ़ नज़र आने लगे !

७. आपको क्या चाहिये

घर की चैखट से बाहर पड़ते ही जैसे रास्ते पर पाँव रखा, तो सामने से आती हुई जानी पहचानी महिला मिली। जो संवाद का सहारा लेकर मेरे साथ-साथ राह पर चलती रही। मेरे साथ चलते हुए मेरे मेहमान प्रोफेसर दीक्षितजी, मर्यादा का दुशाला ओढ़े हम दोनों के पीछे-पीछे तन्मयता से चलते रहे।

वह महिला बार-बार पीछे मुड़कर देखती रही और फिर एक जगह अचानक रूककर पीछे मुड़ी उस अपरिचित प्रोफेसर की ओर देखते हुए बोली '' आपको क्या चाहिये ? क्यों हमारा पीछा कर रहे हैं? ''

मैं हक्की-बक्की विस्मयता के महाजाल में फंसी रही। यकायक मैंने उस महिला को संबोधित करते हुए कहा। ''ये मेरे साथ हैं !''

८. रिश्ते

अमर अपने माता-पिता का इकलौता बेटा था। उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका जाकर पढ़ने की इच्छा प्रकट की, साथ में वादे भी किये कि वह पढ़ाई पूरी करते ही वापस आकर दोनों की देखभाल भी करेगा। दोनों बहुत खुश हुए , उन्होंने तमाम उम्र की जमा पूँजी लगाकर उसे रवाना कर दिया था। वहाँ जाकर अमर जल्दी-जल्दी ख़त लिखा करता था पर जल्द ही खतों की रफ़्तार ढीली पड़ गयी। एक दिन डाकिया एक बडा-सा लिफाफा उन्हें दे गया। ख़त में कुछ फोटो भी थे। ये अमर की शादी के फोटो थे। उसने अंग्रेज़ लड़की के साथ शादी कर ली थी। ख़त में लिखा था - पिताजी, हम दोनों आपसे आशीर्वाद लेने आ रहे हैं। फ़क़त पाँच दिन के लिए, फिर घूमते हुए वापस लौटेंगे। एक निवेदन भी है कि अगर हमारे रहने का बंदोबस्त किसी होटल में हो जाये तो बेहतर होगा। और हाँ, पैसों की ज़रा भी चिंता न कीजियेगा !

दोनों को पहली बार महसूस हो रहा था कि उनकी उम्मीदें और अरमान तो कब के बिखर चुकें हैं। दूसरे दिन तार के ज़रिये बेटे को जवाब में लिखा - तुम्हारे खत से हमें कितना धक्का लगा है कह नहीं सकते, उसी को कम करने के लिए हम कल ही तीर्थ के लिए रवाना हो रहे हैं, लौटेंगे या नहीं कह नहीं सकते, अब हमें किसी का इंतज़ार भी तो नहीं। और हाँ, तुम पुराने रिश्तों को तो नहीं निभा पाये, आशा है, नये रिश्तों को जीवन-भर निभाने की कोशिश करोगे।

- वासुदेव

९. दावत

''नमस्कार जी'' फोन को उठाते ही सुना।

''नमस्कार अंकुर जी, कैसे हैं आप?'' मैंने रवायती तौर पर पूछ लिया।

''एक निवेदन था आपसे मैडम, अगले रविवार हमारी सालियाना काव्य गोष्टी है और आप से निवेदन हैं कि आप शाम ४ बजे उसमें ज़रूर शामिल हों।''

''धन्यवाद अंकुर जी, मैं समय पर आ जाऊँगी।''

''मैडम एक निवेदन और था आपसे, वो अगले साल आप जो कैमेरा लाई थीं वो ज़रूर ले आइयेगा, ग्रूप फोटो ख़ीचने के लिये।''

''धन्यवाद उसे भी न्यौता देकर बुलाने के लिये।''

फ़ोन रखते ही अनायास हंसी के फुव्वारे फूट पड़े। सवाल उठा 'मुझे बुलाया है या मेरी कैमेरा को ?'

१०. रिटर्न गिफ़्ट

दादी ने सुबह सुबह अपनी पांच वर्षीय पोती को प्यार से पुचकारते हुए उसके माथे को चूमकर कहा, Happy Birthday to You वर्षा, ये लो तुम्हारे जन्म दिन का तोहफ़ा।

वर्षा ने अभी गिफ़्ट को हाथ में थामा भी नहीं था, कि उसकी मां की कड़कड़ाती हुई आवाज़ हवाओं को चीरती हुई कानों तक पहुंची ''अरे वर्षा, चल उठ जल्दी कर, आज तेरा जन्म दिन है और स्कूल जाने की तैयारी भी करनी है।''

उस कड़कती, गरजती, बरसती आवाज़ से दोगुनी तीखी और चीरती हुई आवाज़ में वर्षा ने कहा ''मुझे पता है मेरा जन्म दिन है!'' और शिकायत भरे स्वर में बड़बड़ाते हुए दादी के गले में बांहों का हार डाल दिया।

''वर्षा इतने ऊँचे स्वर में बात करना ठीक नहीं है। धीमें लहजें में बात करने की कोशिश किया करो, मुझे खुशी होगी।'' दादी ने संवाद में नरमी और मधुरता की मिली-जुली भावनाओं को भरते हुए कहा।

''दादी क्या आप मुझसे रिटर्न गिफ्ट ले रही हो।'' कहना-सुनना विस्फोटित ख़ुशी लाया। दोनो दादी-पोती उस ख़ुशी में स्नेहलता की तरह एक दूजे से बेल की तरह लिपट गईं।

११. असली शिकारी

हमारे पड़ोसी श्री बसंत जी अपनी तेरह महीने के नाती को स्ट्रोलर में लेकर घर से बाहर आए और मुझे सामने हरियाली के आस पास टहलते देखकर कहाः नमस्कार बहन जी।

नमस्कार भाई साहब। आज नन्हें शहज़ादे के साथ सैर हो रही है आपकी।

हाँ यह तो है। पर एक कारण इसका और भी है। इस नन्हें शिकारी से अंदर बैठे महमानों और घरवालों को बचाने का यही तरीका है।

वह कैसे ? मैंने अनायास पूछ लिया।

अजी क्या बताऊँ , सब खाना खा रहे हैं, और यह किसीको एक निवाला खाने नहीं देता। किसी की थाली पर, तो किसी के हाथ के निवाले पर झपट पड़ता है और !

अभी उनकी बात ख़त्म ही नहीं हुई तो एक कौआ जाने किन ऊँचाइयों से नीचे उतरा और बच्चे के हाथ में जो बिस्किट था, झपटे से अपनी चोंच में ले उडा। मैंने उड़ते हुए पक्षी की ओर निहारते हुए कहा... बसंत जी, देखिये तो असली शिकारी कौन है? और वे कुछ समझ कर मुस्कराये और फिर ठहाका मारकर हंस पड़े।

१२. आईना और अक्स

''आपका परिचय ?''

''मैं खुद से अनजान हूँ। आप कौन?''

''मैं भी अपने वजूद की तलाश में मारा-मारा फिर रहा हूँ।''

१३. भिक्षा पात्र

दरवाज़े पर भिक्षा देते हुए देवेन्द्र नारायण सोच रहे थे, ये सिलसिला कब तक चलेगा ? दरवाज़े पर आए भिक्षुक को खाली हाथ न भेजो, यह तो पिताजी के ज़माने से चलता आ रहा है ! और इसी सोच की बेख्याली में भिक्षा, पात्र में न पड़कर नीचे ज़मीन पर गिरी। कुछ रूखे अंदाज़ से बढ़बढ़ाते हुए वे कह उठे, 'भई ज़रा उठा लेना, मैं जल्दी में हूँ। ' और कहते हुए वे भीतर चले गए।

बरसों बीत गए और ज़िन्दगी के उतार-चढ़ाव जहाँ ऊँठ जैसी करवट लेकर थमे, वहाँ पासा भी पलटा। सेठ देवेन्द्र नारायण मसाइलों की गर्दिश से गुज़र कर ख़ास से आम हो गए और फिर पेट पर जब फ़ाकों की नौबत आई तो वही हुआ जो न होना था। नियति कहें या परम विधान !

एक दिन वे भिक्षा पात्र लेकर उसी भिक्षू के दरवाज़े की चौखट पर आ खड़े हुए जिसे एक बार उन्होंने अनचाहे मन से भिक्षा दी थी। बाल भिक्षू अब सुंदर गठीला नौजवान हो गया था और कपड़ों से उसके मान-सम्मान की व्याख्यान मिल रही थी। सर नीचे किये हुए सोच से घिरे देवेन्द्र नारायण कहीं अतीत में खो गए।

'मान्यवर आप कृपया अपना पात्र सीधा रखें ताकि मैं आपकी सेवा कर पाऊँ।' नौजवान की विनम्र आवाज़ ने देवेन्द्र नारायण के हृदय में करुणा भर दी और साथ में दीनता भी। नौजवान ने उनके भावों को पहचानते हुए विनम्र भाव कहा - ''हम तो वही है मान्यवर बस स्थान बदल गए है और यह परिवर्तन भी एक नियम है जो हमें स्वीकारना है, इस भिक्षा की तरह। न हमारा कुछ है, न आपका ही कुछ है। बस लेने वाले हाथ कभी देने वाले बन जाते हैं।''

१४. पत्थर दिल

रमेश कब, कैसे, किन हालात के कारण इतना बदल गया यह अंदाजा लगाना उसके पिता सेठ दीनानाथ के लिये मुश्किल ही नहीं नामुमकिन सा लगा। अपने घर की दहलीज़ पार करके उसके बंगले के सामने खड़े होकर सोचते रहे - जो मान-सम्मान, इज्जत उम्र गुज़ार कर पाई आज वही अपने बेटे की चौखट पर कहीं झुक न जाए, वो भी इसलिये कि उनकी पत्नि राधा मरन-शैया पर लेटी अपने बेटे का मुंह देखने की रट लगाये जा रही थी - मजबूरन यह क़दम उठाना पड़ा।

दरवाज़े पर लगी बेल बजते ही घर की नौकरानी'' कौन है?'' के आवाज़ के साथ उन्हें न पहचानते हुए पूछ बैठी 'आपका परिचय?

''मै रमेश का बाप हूँ, उसकी माँ सख़्त बीमार है, उसे बुलाने आया हूँ।''

नौकरानी चकित सी मुद्रा में कुछ सोचती हुई अंदर संदेश लेकर गई और तुरंत ही रोती सी सूरत लेकर लौटी। जो उतर वह लाई थी, वह तो उसके पीछे से आती हुई तेज़ तलवार की धार जैसी आवाज़ में ही दीनानथ जी को सूद समेत मिल गया।

'जाकर उनसे कह दो यहाँ कोई उनका बेटा-वेटा नहीं रहता। जिस ग़ुरबत में उन्होने मुझे पाला पोसा, उसकी संकरी गली की बदबू से निकल कर अब मैं आज़ाद आकाश का पंछी हो गया हूँ। मै किसी रिश्ते-विश्ते को नहीं मानता। पैसा ही मेरा भगवान है। अगर उन्हें ज़रूरत हो तो कुछ उन्हें भी दे सकता हूँ जो शायद उनकी पत्नि की जान बचा पायेगा !' और उसके आगे ख़ामोशियों के सन्नाटे से घिरा दीनानाथ कुछ भी न सुन पाया। बस लड़खड़ाते क़दमों से वापस लौटा, जैसे किसी पत्थर दिल से उनकी मुलाकात हुई हो।

१५. मैं दिवाली हूँ

'दिवाली मुबारक हो।' फोन की घंटी बजते ही ज्यूं उसे उठाया तो यही स्वर सुनाई दिया। सोचती रही कौन है जो मुझे जानती है, पहचानती है और बतियाने में अपनापन भी है, पर अपना परिचय दिए बिना यूं ही बातचीत..!

'अरे आपको भी दिवाली मुबारक।' उलझन से घिरे लहज़े में मैंने कह तो दिया, पर मस्तिष्क पर ज़ोर देने के बाद भी ये नहीं समझ पाई कि मैं किस के साथ बात कर रही हूँ। बस कह दिया।

''पहचाना या अभी भी नहीं पहचाना?''

''कोशिश कर रही हूँ पर नाकामयाबी मिल रही है, अब तुम्ही बता दो।''

''मैं दीवाली हूँ, मुंह मीठा करने-कराने आई हूँ।''

''अरे आप अपना मुंह खोलिए और ये लीजिये लड्डू!'' मैंने फिर पूछने के अंदाज़ में हल्के से स्वर में कह दिया।

''कैसा रहा लड्डू का ज़ाइका ?'' मैंने उसे खुश करने के लिहाज़ से कहा, ''बहुत बढ़िया ! चलो आपकी कुछ मदद कर देती हूँ, हम कल मिलेंगे।''

''अब इस उलझन को ख़त्म भी कर दो।'' मैंने थकान से बाहर आने के लिए यही ठीक समझा।

''बताऊंगी पर एक शर्त पर, पैसे देने पड़ेंगे।''

''भई लड्डू से मुंह मीठा तो करवा दिया अब ऊपर से आपको पैसे भी देने होंगे ...'' मैं सोच कर शर्मिंदा होती रही की आज क्यों मैं इतनी अनजान बनी हूँ इस जानी पहचानी-आवाज़ से।

''ज्यादा नहीं एक डॉलर लूंगी। मैं बिंदु, बिन्देश्वरी अग्रवाल हूँ।''

आप कैसी हैं देवीजी ?'

''अब ठीक हूँ बिन्दू जी ! यह दिवाली भी खूब याद रहेगी मुझे, अब याद आया कि कल हमें सरिता मेहता के द्वारा आयोजित बहुभाषी कवि सम्मेलन में मिलना है ।''

ये थी न्यू यार्क की हमारी हास्य कवियित्री डॉ। बिंदु अग्रवाल जो मज़ाकिया कविता कहते-कहते मंच पर तो सभी को हँसा देती है पर आज फोन पर मुझे यूं हँसाने की बजाय उलझनों के घेराव में डाल दिया कि उलझन से बाहर आने के मुझे उसे रिश्वत तक देनी पड़ी ।

गुफ़्तगू का ज़ाइका दीवाली के लड्डुओं से ज्यादा मज़ेदार रहा ।

१६. तरबूजे का सफ़र

भूली-बिसरी आप-बीती बातें जो हमारी उम्र के साथ-साथ हमारी समझ में अपने अर्थ बदलती है, यादों के गुलशन को यूं भी महकया करती हैं। उन्हीं यादों का एक अंश यह भी है।

बहन से विदा लेते हुए जब शशिकाँत अपने गाँव जाने को हुआ तो सौतेली बड़ी बहन ने पास में रक्खा एक बड़ा तरबूजा उठाकर उसे देते हुए कहाः ''इसे तुम्हें माँ तक ले जाना है, पर संभालकर।'' अठारह उन्नीस साल का शशिकाँत अदब की मर्यादा से परिचित था, हामी भरकर तरबूजे को उठाया और बस के लिये रवाना हुआ।

सफ़र तो बस सफ़र था, कोई आसान न था। एक बस से दूसरी बस, फिर टाँगे की सवारी तय करके ट्रेन पकड़ कर सफ़र का आख़िरी पड़ाव तय किया, और किसी तरह उस तरबूज़े के बोझ को झेलता हुआ वह घर पहुंचा और माँ को अमानत सौंपते हुए ख़ुद को आज़ाद किया।

माँ, बहन ने दिया है शशिकाँत ने दम लेते हुए कहा, ''आख़िर नतीजा क्या हुआ ? लाड़ प्यार से लाये हुए उस तरबूज़े को ५ किलोमीटर तक संभाला, पर जब माँ ने उसे काटा तो वह बिलकुल सफ़ेद निकला और माँ हक्की बक्की बेटे का मुंह देखती रही। क्या सौतेलेपन के प्यार का रंग यूं भी फ़ीका पड़ सकता है?

१७. अपनी अपनी फ़ितरत है

''अम्मा, आप अपने किताब-कागज़ समेट कर एक जगह क्यों नहीं रखती, यहाँ-वहां बिखरे रहते हैं ? जहाँ देखो सामान बिखरा हुआ है, बच्चों का, आपका और जब देखो घर में शोर मचा रहता है ।''

''साहिब, बच्चे छोटे है, कोई चीज़ घर में कहाँ एक जगह धरी रहती है? बच्चे घर- घर खेलते है, सामान फेंकते हैं तो आवाज़ आती है, शोर तो होगा ही, पर मेरे पन्ने तो गिरने पर भी खामोश रहते हैं साहिब ।''

''बच्चे तो बच्चे हैं, आप तो बड़ी हैं, सलीके से रखा करें उन्हें। लगता है घर में कूड़ा-करकट भर गया है, जहाँ देखो वहां बिखराव ।''

''साहिब, आप नाराज़ मत होइए मैं उन्हें समेट लूंगी। पर आप बच्चों से भी कह दें, अपना सामान यहाँ-वहां न फेकें। ऊधम न मचाएँ ।''

''हम क्या कहें इन बच्चों से, क्या वो मेरी सुनते हैं ? उन्हें तो शोर भला लगता है ।''

''साहिब, बच्चे आपके हैं, खामोशियों में उथल-पुथल मचाकर शोर को जगाते हैं, पर मैं उस शोर में भी ख़ामोशी सुनती हूँ और मस्त रहती हूँ, आप कागज़ो की खामुशी में शोर सुनते हैं, खफ़ा हो जाते हैं। अपनी अपनी फितरत है साहिब, क्या कीजे ।''

१८. वो साठ मिनट

हॉस्पिटल में काम करते दस साल बीत गए है पर रिश्तों मे पहले कभी ऐसा बवंडर उठते हुए नहीं देखा। अनेकों बार मरीज़ों के साथ, डॉक्टरों के साथ हर गुफ़्तार में हम- शामिल रहती हूँ, कभी किनारा भी कर लेती हूँ, पर आज के माहौल का रंग सोच में एक बवाल सा ले आया।

उस दिन मेरी ड्यूटी शाम ४ बजे से रात १२ बजे तक थी। किसी कारण हास्पिटल राउंड द क्लॉक चालू रहन था। उस रात मेरे साथ मेरी सहकर्मी सलमा और जूली रात १० बजे तक कार्यरत थी। पर ८.४५ के करीब सलमा ने ९ बजे जाने की इजाज़त मांगी क्योंकि उसको राइड मिल रही थी। दिसम्बर का महिना, शिकागो का बर्फीला मौसम , तूफानी हवाएँ खिड़कियों पर दस्तक दे रहीं थीं, यही सोचकर मैंने उसे जाने के लिए इजाज़त दे दी। जूली को इस बात पर बहुत ऐतराज़ हुआ कि वह १० बजे के पहले कैसे जा सकती है? जूली के व्यहवार पर कुछ हैरानी हुई पर मैं सीनियर थी सो सलमा को एक घंटा पहले जाने दिया। ९ बजे वह चली गई।

जूली का अगले ३० मिनिट तक मुंह फूला हुआ था और वह कुछ ज़्यादा ही बेचैन हुए जा रही थी। ९.३० के बाद बेचैनी ने जोर पकड़ा। समयानुसार १० बजे उसका भाई उसे पिक करके पार्टी में उसके साथ जानेवाला था। ९.४५ से वह तैयार होने लगी, मेक-अप लगाया, सैंडल पहना, पर्स लिया और ९.५५ को भाई को फ़ोन लगाया, पर जवाब नदारद! घर में माँ को फ़ोन लगाया, उसे अटपटी बातें सुनाई, भाई की बेजवाबदार होने का उल्लाहना दिया। बस उफ़नते दूध की तरह खुद को काबू में न रख पाई। मैं १० बजे के पहले उसकी बदसलूकी का व्यहवार बर्दाश्त करती रही और घड़ी की ओर देखती रही कि कब १०.०० बजे और जूली जाये। उसकी बेचैनी का असर मुझपर भी हो रहा था... १०.१०, १०.२०, १०.३०,

१०.४०... उफ़।

आखिर उसने मुझसे मुखातिब होकर कहा, ''पता है हमें १०.०० बजे पार्टी में होना था, और अब ११.०० बज रहे हैं। मैं कितनी बेसब्री से इस दिन का इंतज़ार कर रही थी और अब देखो...! मुझे पता होता कि भैया यूँ देर करेंगे तो टाइम कार्ड पंच न करती।''

उसकी बात ख़त्म होने के पहले १०.५५ को उसके भाई ने उसे नीचे आने के लिए काल किया। जूली अपनी हील वाली सैंडल हाथ में लेकर बिना बाय कहे यूं दरवाज़े से बाहर गई जैसे गुबार के फटने पर हवा क़ैद से रिहा होती है।

अक्सर इस वारदात की याद आने पर इसमें छुपा हुआ संकेत ढूँढने के प्रयास में सोचती रहती हूँ। कितना महत्व था उस एक घंटे का। वक़्त भी अपनी मनामानियों से बाज़ नहीं आता। सलमा अपनी सुविधा चाहती थी, जूली ने अपनी सुविधा देखी। पर वक़्त भी अपने चलन से हमारी सोच की रफ़्तार के पर कतरने में पीछे कहाँ हटता है। बस नासमझी के इस दौर में ये साठ मिनिट एक सबक़ सिखा गए कि पढ़े लिखे इंसान अपनी इच्छाओं के ग़ुलाम होकर किस तरह ज़ाहिल बन जाते हैं।

१९. देवरानी-जिठानी

एक समारोह में सामने से आती हुई परिचित कवियित्रि ने मुझे देखते ही मुस्कराकर कहा, ''नमस्कार देवरानी जी !''

''नमस्कार जिठानी जी, कैसी हैं आप?'' मैंने भी मुस्कराते हुए कहा।

''जी ठीक हूँ।'' कहकर वह कुछ हैरानी में गुमसुम सी हो गई। मैंने उसकी परेशानी को आसान करते हुए कहा, ''घर में दो जेठानियाँ हैं, और मैं उनकी छोटी देवरानी।'' वह उलझे हुए सोचों के जाल में जकड़ी हुई मेरी ओर देखने लगी।

मेरा नाम 'देवी' है और मेरा उपनाम 'नागरानी' है।

''मैं आपको देवरानी ही समझती रही !'' उसने कुछ शरमाते हुए कहा।

''ये भी ठीक है जेठानी जी, पहले दो हैं अब तीन हुईं !''

२०. प्रवचन

महात्मा प्रवचन करते ही रहे, करते ही रहे। काफ़ी देर के पश्चात बीच-बीच में एक-एक करके बहुत सी महिलाएं उठ कर चलती गईं। जब एक घंटे के पश्चात महात्मा ने प्रवचन समाप्त किया तो देखा फ़क़त एक महिला सब्र का दुशाला ओढ़े, बड़े धीरज के साथ बैठी उसे तक रही है। उसे देखते ही महात्मा बोले, 'बहन बड़ी देर हो गयी है, तुम भी चली जाती !'

महिला ने आँखें झुकाकर कहा, ''महाराज चली गई होती, पर आप जिस चटाई पर बैठे है, मुझे वह लेकर जानी है।''

(नेट से अनुवाद)

२१. सोच प्रधान

ग़लतफ़हमी का शिकार था कालिदास। अपनी सोच की हीन भावना के तले दबा खुद की नज़रो में बौना बन गया। उसका पेशा दादा-परदादाओं की मिली जुली विरासत थी-कसाई था वह। दसवी पास करके, वह आगे पढ़कर कुछ बनना चाहता था। गूंगे जानवरों की गर्दन पर वार करके अपने पेट को पालने की नीति उसे समझ नहीं आ रही थी।अलग से छोटी मोटी नौकरी करके गुज़ारा करता रहा, पर नियति ! पिता की मौत के बाद माँ उस ड्यूटी पर काम को अंजाम देती रही। बकरों को बलि की चौखट पर चढ़ाना, उनके अंगों को अलग अलग दाम पर बेचना, पैसा कामना और परिवार का पोषण करना। और करती भी क्या जानकी? कालिदास बड़ा बेटा था, पीछे एक और बेटा व बेटी। साधन सीमित रहे और चारा भी न था जानकी के पास।

कालिदास अपने आप में सिमटने लगा, कुछ करने की चाह उसके मन में फैलने की बजाय संकीर्ण होती रही। आदमी जग से, औरों से तो भाग सकता है पर अपने आप से नहीं। ममता के सामने उसके सुख का स्वार्थ बौना पड़ गया और वह खानदानी काम करने में जुट गया।

आज जो संतुष्टि उसे अपने आचरण से, अपने काम से मिलती है, वही उसकी विचार धारा को प्रवाहित करती है मानव अपनी सोच से बड़ा या छोटा होता है, काम से नहीं।'

२२. माई-बाप

सोच के सैलाब में डूबा रामू पेड़ के नीचे बुझी हुई बीड़ी को जलाने की कोशिश में खुद ठिठुर रहा था। दरवाज़े की चौखट पर घुटनों के बल बैठा अपनी पुरानी फटी कम्बल से खुद को ठिठुरते जाड़े से बचाने की कोशिश में जूझ रहा था, पर कम्बल के छोटे-बड़े झरोखे उनकी जर्जर हालत बयान करने से नहीं चूके।

रामू यहाँ ठंडी में क्यों बैठे हो? अंदर घर में जाओ। गली के नुक्कड़ से गुज़रते हुए उसे देखा तो उसके पास चला गया। रामू मेरे ऑफिस का चपरासी है।

साहब अंदर बच्चों के दोस्त आये हुए हैं। गाना-बजाना शोर-शराबा मचा हुआ है, सब झूम-गा रहे हैं। इसलिए मैं बाहर...। कहकर उसने ठंडी सांस ली।

तुम्हारी उम्र की उन्हें कोई फ़िक्र नहीं, रात के बारह बज रहे हैं और यह बर्फ़ीली ठण्ड !

साहब दर्द की आंच मुझे कुछ होने नहीं देती अब तो आदत सी पड़ गयी है। पत्नि के गुज़र जाने के बाद बच्चे बड़े होकर आज़ाद भी हो गए हैं, बस गुलामी की सारी बेड़ियाँ उन्होंने मुझे पहना दी है। कहाँ जाऊं साहब? कहकर वह बच्चों की तरह बिलख पड़ा।

मैंने उसका कंधा थपथपाते हुए निशब्द राहत देने का असफ़ल प्रयास किया और सोच में डूबा हुआ फुसफुसाया !

क्या उन्हें बिलकुल परवाह नहीं होती कि तुम उनके बाप हो? उन्हें बड़ा करने के लिए क्या कुछ नहीं किया तुमने और तुम्हारी पत्नि ने?

वो बीती बातें हैं साहब, 'आज' मस्त जवानी का दौर है, उनकी मांगें और ज़रूरतें जो मैं पूरी नहीं कर पाता, उनकी पगारें कर देती हैं। पैसा ही

उनका माई-बाप है।

तो इसका मतलब हुआ, संसार बसाकर, बच्चों की पैदाइश से उनके बड़े होने तक का परिश्रम, जिसे हम 'ममता' कहते हैं कोई माइने नहीं रखता?

नहीं मालिक ! मैं ऐसा नहीं सोचता। दुनिया का चलन है, चक्र चलता रहता है और इन्हीं संघर्षों के तजुर्बात से जीवन को परिपूर्णता मिलती है। जीवन के हर दौर का ज़ायका अलग-अलग होता है। जो मीठा है उसे ख़ुशी से पी लेते हैं, जो कड़वा है उसे निग़ल तक नहीं सकते। बीते और आने वाले पलों के दो पाटों में जीवन बिताना है। काल-चक्र चलता रहता है, बीते हुए कल की जगह 'आज' लेता है और आज का स्थान आनेवाला 'कल' लेगा। यही परम सत्य है और कड़वा सच भी, जिसे स्वीकारने में दो राय नहीं होती।

२३. बेसुधी, वो भी ऐसी

घर का ताला लगाते ही, लिफ्ट का बटन दबाया। लिफ्ट आई, दरवाज़ा खुला और भीतर जाते ही मैंने ७ नंबर दबाया और बेखयाली में वहीं खड़ी होकर प्रभु वफा के कलाम की धुन में खो गई।

जाग जाग बेसुध जाग, भूल न जाना माग रे।

स्थाई पूरी करते हुए अंतरा शुरू किया...

उमर वफा है बाक़ी थोड़ी, गफलत की है नींद निदोरी
जाग तो जागे भाग रे।

जैसे ही सुर साधना की तन्मयता से बाहर आई, तो जाना कि लिफ्ट वहीं की वहीँ सातवें माले पर खड़ी है, जहां मेरा घर था। मैं इस नए किराए के मकान की बात कर रही हूं। पुराने घर में सीढ़ियां चढ़ने उतरने की आदत इतनी पड़ चुकी थी कि लिफ्ट के अदब आदाब ही न रहे। ज़ीरो बटन न दबाने की गलती का अहसास हुआ।

आखिर ज़ीरो नंबर दबाया और लिफ्ट चालू हुई. ६, ५, ४, ३,२ और १ के बाद ० पर रुकते ही लिफ्ट का दरवाज़ा खुला। मैं बाहर आई पर अपनी बेसुधी के एहसास पर दिल ही दिल में बहुत शर्मिंदा हुई।

लौटते वक्त लिफ्ट में पाँव धरा और सतर्क रूप से ७ नंबर दबाया। ऊपर जाना तो ज़रुरी था आगे कुछ नहीं कहूँगी। नीचे फिर भी काम पड़ता रहेगा, आना पड़ेगा और फिर लौटकर वापस ऊपर भी जाना पड़ेगा। बस ऐसी बेसुधी से बार-बार जागना ज़रूरी है।

२४. नारी का मनोबल

मीनाक्षी मुझे अपना बेटा लौटा दो। मेरी ममता का दम घुट जाए, इससे पहले मुझे राहुल लौटा दो। अब भी समय है, वह सिर्फ़ १२ साल का है, पुरानी यादें धुंधली होकर उसके मन की तूलिका से आहिस्ता-आहिस्ता मिट जाएँगी। बस तुम सच का सामना करने की हिम्मत जुटाओ। जो सच है उसे स्वीकारने में आसानी हो जाएगी। बीमारी की अवस्था में रितिका अपने सामने बैठी अपनी प्रिया सहेली मीनाक्षी को अपने मन की भावनाओं से अवगत कराती रही। पर राहुल मुझे अपनी माँ मानता है, अचानक तुम्हें माँ के रूप में स्वीकारना और माँ कहना उसके लिए किसी मानसिक आघात का कारण बन सकता है। मीनाक्षी मैं एक नारी के दर्द की व्यथा जानती हूँ, और उसी की दुहाई देकर कहती हूँ कि अब फ़ैसला करने में देर मत करो। आज जिस मोड़ पर मैं खड़ी हुई हूँ, ऐसी ही किसी हालत के तहद मैंने राहुल को तुम्हारी गोद में डालकर अपनी ममता तुमपर निछावर कर दी थी। राहुल तब ८ महीने का था, पर मैंने तुम्हारी जीने की इच्छा को ज़िंदा रखने के लिए अपनी ममता का गला घोंट लिया था। शायद नारी के ममत्व में करुणा मात्र ही उसे कुछ देने के लिये उकसाती है। मुझे खुशी है कि तुम राहुल को अपने आँचल में समेटकर जी उठी। आज उसी मोड़ पर मैं हूँ जहाँ कल तुम थी। आज वो लिया हुआ क़र्ज़ लौटाकर एक माँ को जीवन दान दे दो। देर होने के पहले तुम्हें तय करना है मीनाक्षी।

ज़िंदगी से भागना आसान है, सामना करना मुश्किल है, वो भी कड़वे सच के सामने। पर सच भी अपने आप को प्रत्यक्ष किए बिना कहाँ रहता है। इसी सोच में मीनाक्षी रात भर जागते-जागते भोर के वक़्त, हर ख़याल से बेदख़ल होकर नींद की गोद में लुढ़क गई। जाने किस पदचाप ने उसके अंतःकरण पर दस्तक देकर जगाया। वह आँखें मलते हुए उठी। उसे

अपने साँसों में एक घुटन सी महसूस हो रही है, जिससे वह रिहाई पाने के लिए छटपटा रही थी। क्या वह न्याय कर पाएगी- राहुल के साथ, रितिका के साथ, खुद अपने साथ !

फैसला करना धर्म संकट का संकेत बन कर अब भी सामने खड़ा था । नारी का मनोबल ही उसके अस्तित्व की नींव है, उसकी असली पहचान है। तय किया- जीने की इच्छा को जगाना ज़रूरी है । एक औरत दूसरी औरत की ममता का दम घुटते हुए नहीं देख सकती ।

२५. चोट

‘‘मैं आपकी माँ के साथ सालों-साल गुज़र-बसर करते करते उकता गयी हूँ। एक नीरसता मेरे भीतर घर करने लगी है । इस घुटन भरे धुँध को तोड़ना बहुत ज़रूरी है, नहीं तो मैं पागल हो जाऊंगी ।’’ झल्लाहट भरे अंदाज़ में राधिका ने अपने पति श्याम की ओर देखकर कहा।

श्याम रिश्तों की अहमियत जानता था । मान, मर्यादा के लिहाज़ों को ध्यान में रखते हुए बोला, ‘‘तुम कहती हो तो यह सच होगा । मैं नहीं चाहता कि तुम किसी मानसिक तनाव की पीड़ा को सहन करो । चलो कुछ वक्त तुम्हारी माँ के पास चलकर रहते हैं, शायद तुम्हें एक नयी ताज़गी मिल हो जाए, और जीने का लुत्फ़ भी मिले। हाँ बता देना कि कब चलना है !’’

२६. गया इसका अंगूठा

अक्सर मुंबई महानगरी में मंच संचालन करते वक़्त किसी वरिष्ठ संचालक को अपने सामने देखकर उसकी सराहना करने की अनूठी अदा पाई गयी है। एक ऐसी ही काव्य गोष्ठी में एक संचालन ने अपने सामने दूसरे वरिष्ठ सँचालक को देखते हुए कहा, ''मैं तो आपको द्रोणाचर्य मानता हूँ, और एकलव्य की तरह आपसे प्रेरणा पाकर नक्शे-पा पर चलने का प्रयास करता हूँ।''

पीछे वाली सीट पर बैठी मेरी परिचित मित्र ने मुझे कोहनी मारते हुए कहा, ''गया इसका अंगूठा, पहले ही अंगूठा छाप है।''

२७. दाव पर द्रोपदी

कहते हैं चोर चोरी से जाए पर हेरा फेरी से न जाए। अनील भी कितने वादे करता, किए हुए वादे तोड़ता और जुआ घर पहुँच जाता, अपनी खोटी क़िस्मत को फिर आज़माने, जहाँ पर हार उसके हौसले को बार-बार मात देती रही।

एक दिन अपनी पत्नि को राज़दार बनाकर उसके सामने अपनी करतूतों का चिट्ठा खोलते हुए कहा- अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं है जो मैं दाव पर लगा सकूँ। क्या करूँ? क्या न करूँ? समझ में नहीं आता। कभी तो लगता है ख़ुद को ही दाव पर रख दूँ।

पत्नि समझदार और सलीकेदार थी, झट से बोली- आप तो उस खोटे सिक्के की तरह हो, जो जुआ की बाज़ार में भी कैश नहीं हो सकता ? अगर आपका ज़मीर आपको इज़ाज़त देता है तो आप मुझे ही दाव पर लगा दीजिए। इस बहाने आपके किसी काम तो आ सकूंगी।

पत्नि को दाँव पर लगाने की बात सुनकर अनील शर्म से पानी- पानी हो गया। और इस कटाक्ष के वार से खुद को बचा न पाया। अलबता ज़िंदगी की राह पर सब कुछ हार जाने के बाद भी, जो कुछ बचा था उसे दाव पर लगाने से बच गया।

२८. भूख और भीख

खिड़की की सलाखों से देखा, ज़मीन पर मैले-कुचैले चीथड़ों में लिपटा वह लड़का, शरीर कमज़ोर और आँखें धँसी हुई, उस पुराने कंबल से लिपटा होते हुए भी कंबल के अनेक छोटे-बड़े झरोखों से अपने तन की जर्जर अवस्था का परिचय देने में समर्थ था।

'छुटकी' खाने की थाली से निवाला लेकर सोचती रही, उस हम-उम्र अनजान साथी को तकती रही जो अपनी सूनी आंखों से उसकी ओर देख रहा था। पल को तो उसे लगा कि वह खिड़की के उस पार से उसे ही देख रहा है जैसे इस पार से वह उसे देख रही थी। फिर उसे लगा कि वह उसे नहीं, उस निवाले को देख रहा है जो उसके हाथ में था। छुटकी थाली लेकर खिड़की के पास खाना खाने के लिए आ बैठी थी। हर रोज़ की तरह माँ आज भी काम पर जाने से पहले थाली में उसका खाना परोस गई थी- एक रोटी, थोड़ा आचार और कुछ नहीं !

मुँह का निवाला हाथ में था, उसे निगलना ज़रूरी था ताकि पेट की आग ठंडी हो सके। पर सामने शिथिलता से ठंडा होता हुआ तन ज़मीन पर लेटा-लेटा उसी निवाले पर नज़र टिकाए हुए था। इस पार और उस पार का फासला कम था, तय उसे करना था!

तय हुआ। हाथ का निवाला सलाखों के बीच से आगे बढ़ाया- अपने मुँह से हटाकर उस मुंह तक ले आई। भूख और भीख का रिश्ता, जीवन और मौत का रिश्ता, ग़ुरबत से ग़ुरबत का रिश्ता निभाने की रस्म उसने अदा कर दी।

ग़रीबी किस क़दर इंसान को पल में दानवीर बना देती है यह खुली आंखों से मैं दूसरी खिड़की से देखती रही।

२९. मिठास में कड़वाहट

अरे भाई दीनानाथ जी कैसे हो ? फोन का रिसीवर उठाते ही दीनानाथ ने आवाज़ सुनी।

''मैं मज़े में हूँ आप कैसे हैं? हाँ कल आप जो मिठाई लाए थे उसका कड़वा ज़ायक़ा अब भी मुंह में बाक़ी है।'' कहकर दीनानाथ चुप हो गये।

''वो कैसे? मिठाई और कड़वी, क्या बात कही है?'' सहज स्वर में कहते हुए कैलाश जी ने एक ज़ोरदार ठहाका लगाया।

''हाँ सच कह रहा हूँ, वो जो 'कड़वे सच' वाली बात आपने कही वो अब तक पचा नहीं पाया हूँ।'' दीनानाथ जी की लहज़ा कुछ फ़ीका सा हो गया।

''मेरी कौन सी बात कड़वी लगी आपको?'' कैलाश जी के माथे पर बल पड़े।

''वही कि बेटी-बेटी होती है, बहू बेटी नहीं बन सकती।'' दीनानथ ने दबे मुंह कह ही दिया।

''दीनानाथ जी सच तो सच होता है, मानें या न मानें।''

''कैलाश जी इस सच को जानता हूँ और मानता भी हूँ, मेरी बेटी आपकी बहू है, आपकी बेटी नहीं। अपना बनाने के लिए हमें स्वीकारना पड़ता है, उन तमाम कमियों और कमजोरियों के साथ उनको जिन्हें हम अपना कहते हैं। पर उस सच का ज़ायक़ा आपने शायद नहीं लिया है। जो कड़वी दवा खुद न पी सके उसे औरों को देने में क्या मज़ा है? ख़ैर छोड़िए कल की बात, आज आपको शुभ दशहरा मुबारक हो।'' दीनानाथ जी ने रिवायत निभाते हुए कहा।

''आपको भी।'' कैलाश जी का स्वर बुझता सा चला गया, यह शायद उस कड़वाहट का असर रहा जो उसने अभी चखी थी।

३०. सुखद हादसे

हादसे ! जी हाँ बिल्कुल हादसे जो कभी निहायत ही ख़ुशगवार बन जाते है। तबीयत में तरंग सी उठती है जब भी उस दिन की याद ताज़ा होती है।

'सुधा', हमारी वही जानी-पहचानी कहानीकार सुधा, जिनसे मेरी पहली मुलाक़ात मेरे ही घर पर चाय के साथ लेखन की विधाओं पर चर्चा करते हुए हुई, जाते समय अपने कहानी-संग्रह की प्रति मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, ''इसे पढ़कर अपनी राय ज़रूर देना।''

सुधा जी ज़रूर पढ़ूंगी, पर ख़रीदकर ! मैंने उस सुंदर हरे कवर की पुस्तक जिसका उन्वान था 'रहोगी तुम वही' हाथ में लेते हुए कहा।

अब पहली बार अपनाइयत से मिलना और पैसों का बीच में आना कोई गवारा बात तो नहीं। उन्होंने अपनाइयत से मेरे हाथ रोकते हुए कहा।

मेरे बहुत कहने पर मेरे दिए दो सौ रुपये उन्होंने कार की सीट पर रखे और अलविदा कह कर चलीं गईं। दूसरे दिन फोन पर जब मेरी उनसे बात हुई तो वो कहती रही - ''मैंने रास्ते में ५०० रुपए का पेट्रोल भरा लिया, पर पर्स खोलने पर न क्रेडिट कार्ड मिला, न पूरे पैसे ही। कुल ३५० रुपये के क़रीब निकले, पर बॉल-बॉल बची जब सीट पर पड़े २०० रुपये याद आए।''

यह सुखद घटना पहली मुलाकात को एक यादगार मुलाकात बना गई।

३१. अनाथ

रमा सोच में डूबी रही, अपने आप से लड़ती रही। कशमकश के ताने-बाने उसे जकड़ रहे थे, तय करना मुश्किल हो गया। लक्ष्मण रेखा रही घर की दहलीज़ ! इस पार की दुनिया में थी रिश्तों की घुटन, उस पार की दुनिया में अपने ढंग से जीने की आज़ादी। पर जीने की एक कड़ी घर की चौखट के भीतर जुड़ी थी।

अनाथाश्रम में काम करते-करते उसका लगाव वहाँ के बच्चों से इतना बढ़ गया कि वह ज़ियादा समय वहीं पर बिताने लगी थी, रात देर घर आती और सुबह जल्दी काम पर चली जाती।

आज तो हद हो गयी। १० बजे घर पहुँची तो सब खाना खाकर अपने अपने कमरों में जा चुके थे, किसीको उसको शायद इन्तज़ार ही नहीं रहा। सास ससुर और नशे में धुत पति जो कभी नींद से जगा ही नहीं था, सभी खाकर सो गए थे। अकेले खाना खाते हुए रमा को लगा कि वह ख़ुद अनाथ हो गई है। उसकी ज़िमेदारियों का बोझ बाँटने वाला कोई न था। कमाकर घर के लिये दो वक़्त की रोटी का जुगाड़ करना, घर संभालना, और जाने कितनी दुश्वारियों से गुज़रना पड़ता था उसे..!

सोच की तार टूटी जब उसका १० साल का बेटा आँखें मलते हुए रसोई घर में उसके पास आकर बैठा गया। माँ की सूनी आँखों में देखते हुए कहा, ''माँ तुम्हें अनाथ बच्चे इतने प्यारे लगते है कि तुमने मुझे भी अनाथ कर दिया है। मैंने भी खाना नहीं खाया है, बहुत भूख लगी है। मुझे भी अपने साथ खिलाओ ना !

३२. ज्ञान की विरासत

मेरे पोते यशराज। यश का पहला जन्म दिवस ! रौनकों से घिरे अपनों और महमानों के बीच ख़ुशियाँ रक्स कर रही थी। शुभकामनाओं के साथ लेते हुए अनेक खिलौने, कपड़े, और रोचक सौग़ातों के साथ मैंने भी मेरे पोते के गले में सोने की चेन पहनाते हुए एक पैकेट उसे देते हुए कहा... ''यह तुम्हारी अपनी पहचान पाने का पहला क़दम होगा और उड़ान भरने की सीढ़ी भी..!''

बहू-बेटे ने जैसे औरों की सौग़ातें खोलीं वैसे मेरी भी..! सब के मन में कौतूहल था... पर आश्चर्य ! उसमें से एक सुंदर पुस्तक निकली, सौ बाल कविताओं के साथ-साथ रंगीन आकर्षक चित्र भी थे... उन्वान पढ़ा गया My first step to Literacy जैसे-जैसे यश बड़ा होता रहा, ज़िन्दगी के पलटते पन्नों के साथ मैं उसे हर रात, उसी पुस्तक से एक कविता पढ़कर सुनाती और पलटते वर्कों के साथ उसकी आंखें बदलती तस्वीरों को देखती, पहचानती। सितारों की तस्वीर देखता तो कह उठता 'Twinkle twinkle little star', कुर्सी के नीचे बैठी बिल्ली को देखता तो कह देता 'Pussy cat, pussy cat...'

अब वह सात साल का है और उसकी छोटी बहन दो साल की। आदतन ४० साल से पढ़ते पढ़ाते बच्चों के साथ इतना जुड़ गई हूँ की बाल शिक्षा मेरे भीतर एक अनोखा संसार रच बैठी है। ''बहू उस बाल पुस्तक को ज़रा ढूंढ निकालना, अब समय आया है इस मुन्नी को पढ़ कर सुनाऊँ।''आज, कल, परसों, अब नहीं बाद में, सभी अवसर निकल गए पर पुस्तक हाथ न आई।

''माँ वह पुस्तक मै शायद अपनी भाभी को उसकी बेटी के लिए दे आई हूँ।'' बात आई गई हो गई... और एक शाम उसकी भाभी मिली तो

मैंने उसे पुस्तक की याद दिलाते हूए कहा, ''अब तो तुम्हारी बेटी भी छः साल की हुई है। मुझे वह पुस्तक मुन्नी के लिए चाहिए।'' पर आंटी वह तो मैंने अपनी बहन को दे दी थी।'' इतनी अच्छी पुस्तक से मेरी बेटी ने सरलता से कविताँये सीखी तो सोचा उसे दे दूं। तब जाना की ज्ञान की विरासत भी गंगा की तरह बहती रहती है, पर एक अलग दिशा में! जब अपने घर में दूसरी संतान आई तो वह ज्ञान की गंगा कहीं और बहती रही..! इस विचार का अनुकरण करते हुए एक बार बहू की भाभी की बहन से पूछा, ''किरण, क्या वह कविता की पुस्तक अब भी तुम्हारे पास सलामत है।?

कुछ हैरानी से मुझे देखकर कहने लगी, ''आँटी वह तो मैंने अपनी भाभी को उनके बेटे के लिए दी है।''

३३. मुक्ति

ये इश्क नहीं आसां, इक आग का दरिया पार करना है। मीरा को भी कृष्ण से इश्क हुआ था, तन्मय होकर वह उसकी हो गई, साधना और आराधना के अंतर को मिटाती हुए प्रार्थना बन गई, और प्रेम के अधर की बांसुरी बन गई। बावजूद इसके युग-युग का अंतर और विधि का विधान सदा कायम रहा है । मीरा और कृष्ण पड़ोसी थे, साथ उठाना-बैठना, हँसना-खेलना, कब उन्हें प्रेम के मायाजाल में जकड़ता गया पता ही नहीं पड़ा । जाति-भेद बीच में रहा, कृष्ण -ब्रह्मण, मीरा- क्षुद्र ! मीरा की माँ कृष्ण के यहाँ साफ़-सफ़ाई का काम करती थी । कुछ भी अनुकूल न पाकर दोनों घर से फरार हुए और जाकर कोर्ट में शादी कर ली । नदी के उफान को, बाधाएँ कहाँ रोक पायी हैं ? वे तो हर बांध़ तोड़ जाती है अपनी मनमानियों की गंगा में ।

नए संसार की रचना हुई । एक पति घर का कुलपति बना, अपने ऊंचे घराने के होने का आभास हर बात से ज़ाहिर करता रहा । खाना खाने बैठते, तो मीरा पंखा झलती, उसके आगे पानी भरकर रखती, खाने के बाद थाली हटा लेती, फिर ख़ुद खाना खाती । पत्नि-धर्म की शायद यही मर्यादा है, इसी सत्य का अनुकरण करते-करते, सब्र के पानी से अपना परिवार सींचते-सींचते अब मीरा तीन बेटों और एक बेटी की माँ बन गई । बच्चों ने घर के आंगन में माँ की ममता का आंचल थामा और पिता की राजनीति का मौन विरोध किया, जिसकी जकड़न ने माँ को लगभग मौन मूर्ति बना दिया था । जो करना है, करना है, सोचना नहीं है । अपने हर कार्य को एक ढांचे में ढाल लिया मीरा ने । पेड़ पुख्ता हुआ, शाखें फैली, टहनियां हरी- भरी हुई, घर में शहनाइयों के साथ-साथ किलकारियां, हँसना, रूठना, मनाना, कहकहे और मौज मस्तियाँ-आंगन में खिले फूलों की तरह खिल उठीं । फिर

भी नियाति अपना हर कार्य अपने निश्चित दायरे में करती आई है, और आगे भी यही होना है।

परिंदों पर कितनी भी पाबंदियां लगाओ, उड़ने से बाज़ कहाँ आते ! दो लायक बेटे अपने अपने परिवार के साथ विदेश में जा बसे, पर सबसे बड़ा बेटा विजेश मीरा का श्रवण बन गया, अपने परिवार को पिता के क़ायदों के ढांचे में ढाल लेने को तत्पर।

तुम भी औरों की तरह जाकर अपनी नगरी बसाओ, हम दोनों की चाकरी करके तुम्हें क्या मिलेगा? पिता दहाड़ उठते। कृष्ण की कड़कती आवाज़, विजेश की पत्नि राधा के कानों में पिघला हुआ शीशा बनकर घुल जाती। पर विजेश बड़ा होकर भी छोटा बना रहा, और साथ देने में एक क़दम भी पीछे न हटा। पत्नि राधा धर्म का पालन करते, मर्यादा और संस्कार से पति का साथ निभाती रही। काल चक्र चलता रहा और मीरा के बालों की सफेदी के साथ-साथ उसके आँखों की उदासी भी और गहरी होती रही।

तहलका मच गया एक दिन-अचानक कृष्ण जी को दिल का दौरा पड़ा और राह का राही हस्पताल में जो गया तो फिर लौट कर घर न आया। पीछे रह गयी सूनी आँखों में उदासी लिये मीरा! विदेश से बेटे आए, रीति रस्मों को निभाया, माँ को दुलारा पर मीरा की आंख से एक आंसू न गिरा। जाने कितने अनदेखे आंसू उसने उम्र भर बहाए जो आज उसकी आँखों में समंदर की जगह सइरा समा गई थी।

आज जब मीरा अपने जीवन को साक्षी होकर देखती है तो वह महसूस करती है कि तन की क़ैद से रिहाई पाने वाला कृष्ण उम्र भर मीरा को मन की क़ैद में यूं जकड़ता रहा कि उस तंग दाइरे में साँस लेने के सिवा मीरा के लिये और कुछ मुमकिन न था। दिन महीने, साल बीत गए हैं अब मीरा पैंसठ साल के आस पास की, मौन मूर्ति बनी घर के उसे दायरे में घूमती-फिरती है, कभी तुलसी को पानी देते हुए, सूर्य की पहली किरण की तरह चेहरे पर आभा लिये उन पगडंडियों पर नज़र फेरती है जो वह पीछे, बहुत पीछे छोड़ आई है, तब जाकर उसे लगने लगता है, जैसे उसे मुक्ति मिली है। अपने मन से निबाह और निर्वाह की राहों पर मौन साधक बन कर वह अपनी मुक्ति का द्वार ढूंढ पाई है। परिंदा अपनी आज़ादी पाकर ही मुक्त होता है !

३४. साफ़ खिड़की

एक जवान दम्पति नई जगह आकर रहने लगे।

दूसरी सुबह जब वे नाश्ता कर रहे थे, तब उस नौजवान पत्नी ने अपनी पड़ोसन को धुले कपड़े रस्सी पर सुखाते हुए देखा।

उसके कपड़े ज़ियादा साफ़ नहीं लगते। उसने कहा, शायद उसे सही ढंग से धोने नहीं आते, या फिर उसे बेहतर साबुन की ज़रुरत है।

उसके पति ने उसकी ओर देखा, पर वह चुप रहा।

हर सुबह नौजवान पत्नी वही टिप्पणी किया करती थी। लगभग एक महीने के बाद नौजवान की पत्नि आश्चर्यचकित रह गई जब उसने रस्सी पर साफ़ सुथरे धुले हुए कपड़े देखे।

कहने लगी आखिर वह कपड़े धोना सीख ही गई। जाने किसने उसे यह सिखाया।

पति ने मुस्कराकर कहा, ''आज मैंने सुबह जल्दी उठकर इस खिड़की के शीशे साफ़ कर दिए।''

यही सब ज़िन्दगी के साथ होता है। हम अपने आस-पास जो भी देखते हैं वह सब हमारी देखने वाली खिड़की की साफगोई पर निर्भर है।

अनुवाद :
देवी नागरानी (नेट से)

३५. बातों से बू आये

रमाकांत और बुद्धिनाथ दोनों जवानी से अधेड़ उम्र संपूर्ण तक बहुत अच्छे पड़ोसी रहे। एक आंगन में पले बड़े, शादी की और अब अपने संपूर्ण परिवार के मुख्य सदस्य बने हैं। उस आंगन के बीच एक छोटी दीवार उनके मज़बूत रिश्ते के बीच थी, फिर भी वे सुबह-शाम, आते -जाते सब एक दूसरे को देख सकते थे, बातचीत कर सकते थे, और कभी कभार उनकी घरवालियाँ भाजी की अदला-बदली भी कर लेती थीं।

रमाकांत के पिता को गुज़रे १० साल हुए थे एक ही बेटा होने के नाते उसकी माँ पार्वती उसके साथ रहती थी। बद्रीनाथ उसे भाभी कह कर बुलाया करता था। कई महीनों से वह रमाकांत के बर्ताव में, उसकी बातों के लहजे में तब्दीली देख रहा था, पर बात उनके घर की है, यही सोचकर वह चुप रहा। कभी खड़े-खड़े-हाल चाल पूछ लेता।

एक दिन ऊंची आवाजों ने उसके कान खड़े कर दिए।

''जैसे बड़ी हो रही हो, लगार्ज़ होती जा रही हो। न अपने रहने का, न अपने कपड़ों का ख्याल है, न साफ़ रखती हो। न ठीक से उन्हें पहनती हो हमारी मर्यादा का भी कुछ ख़याल नहीं है !''

बद्रीनाथ को अपने घर से निकलते देखकर रमाकांत चुप हो गया, पर बात बद्रीनाथ के दिल को छेद गयी। उससे रहा न रहा गया। वह बात का तेवर और उसकी दिशा पहचान रहा था। अपनी पत्नी की ओर देखकर, ऊंची और खीजती हुई आवाज़ में कहा, ''भाग्यवान आज आंगन के उस पार से गन्दी बू आ रही है।''

३६. ईमान की दौलत

एक मध्य वर्गीय आदमी किसी दुकान पर नौकरी करता था। अपनी मेहनत और ईमानदारी से उसने दो बरसों में ही अपने मालिक का दिल जीत लिया। एक दिन अपने कन्धों का बोझ उतारकर उसे एक नोटों की थैली देते हुए मालिक ने कहा, ''आज से जो काम मैं करता रहा वह तुम्हें करना है। यह आज की बिक्री की नगद है, अपने साथ ले जाओ। कल सुबह काम पर आते आते बैंक में जमा कर आना। हर दिन यही काम अब तुम्हें संभालना है।''

यह सिलसिला एक वर्ष तक यूं ही बिना किसी नागे और अड़चन के चलता रहा जिसके एवज़ मालिक ने उसे पगार में और ओहदे में भी इज़ाफ़ा दिया। पर भाग्य जब साथ छोड़ता है तो दुर्भाग्य साथ हो लेता है।

एक दिन घर से निकलते हुए नियमित रूप से उसने नोटों की थैली ली और बैंक की ओर जाने के लिए रवाना हुआ। जब बैंक पहुंचा तो थैली नदारद थी। हैरान परेशान सा वह जिस रास्ते से आया था, वापस पग-पग उसी रस्ते से लौटकर जब घर पहुंचा तो देखा उसका १० साल का बेटा वही नोटों भरी थैली लिए उसके सामने खड़ा था।

पापा, ''आप इस थैली को लिफ्ट में ही भूलकर चले गए। जब मैं स्कूल जाने को निकला तो मुझे यह मिली।'' और उसने वह थैली पिता को थमा दी।

ईमानदारी दाग़गार होने से बच गयी, इस बात का शुक्र करते हुए उसने अपने बेटे को गले लगाया और अपने माथे का पसीना पोंछते हुए उलटे पाँव लौटने लगा। इस बार उसने थैली को मज़बूती से कस कर पकड़ा, ऐसे जैसे कोई अपनी मान मर्यादा को संभाल रहा हो।

३७. दाने-दाने पे लिखा

कहावत सुनी है और मान्यता भी है, पर कभी-कभी ज़िन्दगी की राहों में ऐसे अजीब मोड़ भी आते हैं, जहाँ अपने किये हुए चुनाव से इंसान हार जाता है ।

आजकल के चलन के अनुसार किट्टी पार्टी आम होने लगी है । ऐसी ही दस औरतों की एक पार्टी आज सविता के बंगले पर जमी हुई है । खूब खाना-पीना, गाना-बजाना और फिर अन्ताक्षरी और अंत में किट्टी का ड्राव । इस बार कुसुम की लाटरी लगी, जब हर एक महिला ने दस-दस हज़ार देते हुए उसे एक लाख पाने की बधाई दी । कुसुम ने बड़े जतन से पैसे समेटे और एक प्लास्टिक की थैली में डाल कर बगल में रख लिए ।

विदा करते वक़्त मेज़बान सविता ने बच्चे हुए पकवानों का एक डिब्बा बनाकर कुसुम को, और बाकी सहेलियों को भी दिया । अपने घरों की ओर रवाना होते हुए रंगीन महिलाओं का वह झुण्ड निकला और अपनी-अपनी दिशा की ओर चल दिया। अब पीछे रह गई आती हुई बाई-बाई, सी यू की आवाजें ।

कुसुम की गाड़ी एक सिग्नल पर जैसे ही रुकी एक बेपनाह गरीब भिखारी हाथ फैलाये खाने के लिए हाथ फैला रहा था । जाने क्या सोचकर कुसुम ने सीट पर रखी दो थैलियों से खाने की थैली उठाकर उसे दे दी और अपने घर की ओर रवाना हुई । जब घर पहुंची तो पहले उसने थैली खोली, जैसे ही हाथ डालकर पैसे निकलने की कोशिश की तो दंग रह गई । उसमें बच्चा हुआ खाना पड़ा था, जिसके एवज़ वह एक लाख रुपये की थैली उस भिखारी को दे आई थी ।

उस खाने पर तो नहीं पर ता-उम्र पेटभर खाने के लिए इतनी बड़ी

रक्म पाकर, भिखारी तो मालामाल हो गया और जाने कितनी दुआएं कुसुमजी को खाना खाते देता रहा होगा। भाग्य अपना-अपना है। अनजाने में दी हुई भीख अपना मूल्य खुद आंक गई।

३८. कथनी और करनी

एक दिन मेरी घनिष्ठ सहेली ललिता का रेफेरेन्स लेकर वह नौजवान मेरे घर आया और अपनी पढ़ाई में आई दुश्वारी के लिए विनम्रता से मेरी मदद मांगत रहा। मैंने मदद करने का वादा यह कहकर किया - कल तो मैं चार दिन के लिए बाहर जा रही हूँ, और खुद भी थोड़ी परेशान हूँ, जब लौटूँगी तो कोशिश करके तुम्हारे काम में तुम्हारी मदद ज़रूर कर दूँगी !

शायद नौजवान में भी इन्सानियत का जज़्बा जाग उठा, खड़े होते हुए कहने लगा-माँ जी कोई काम मेरे लायक़ हो तो ज़रूर कहिएगा, मैं भी आपके बेटे के समान हूँ। मैंने कुछ राहत महसूस करते हुए उसकी ओर देखते हुए कहा-कल सुबह छः बजे मेरी गाड़ी है, और मैं अकेली स्टेशन पाँच बजे कैसे जा पाऊँगी, यही सोचकर परेशान हूँ। अगर तुम मुझे स्टेशन छोड़ आओ तो मुझे बहुत ही खुशी होगी।

बात सुनकर वह कुछ परेशानी की हालत में बोल उठा-माँ जी मैं ज़रूर आपको ले चलता, पर मैं खुद आज रात १२ बजे की गाड़ी से दोस्तों के साथ लोनावला जा रहा हूँ, दो दिन बाद लौटूँगा।

सच चीख़ चीख़ कर कह रहा था 'जो खुद मदद मांगने आते हैं, वे कहाँ किसी की मदद कर पाते हैं ! वे तो खुद ही मोहताज होते हैं।'

उस दिन ज़िंदगी का एक और सच जाना- कहना और करना दो अलग-अलग पहलू है !

३९. देश का भविष्य

मेम साब, यह महंगाई तो हम ग़रीबों को मारकर दम लेगी, ४०-५० से कम कोई भाजी नहीं है, टमाटर और दालें तो देखे महीने हो गए है।

मेरी काम वाली गीता अपनी बात के साथ साथ सभी परिचित घरों की बातें जब तक बता न देती, उसका पेट नहीं भरता। फिर चाहे कोई सुने या न सुने ! मैं सुनकर हैरान तो हुई पर क्या करती, बस सोच पर मेरा बस रहा, सोचती रही। वो सारी बातें कितनी सच है, यह तो आए दिन बाज़ार जाने से पता पड़ ही जाता है।

'क्या आपको पता है हम दोनों बहनें लगातार चार दिन से बिना दूध-शक्कर की चाय, उबले चावल की कांजी और कभी उस घर का, कभी आपके घर का दिया हुआ खाना खाकर जी रही हैं। बस उम्र भर इस पापी पेट के लिए काम करते रहना ही हमारी ज़िंदगी है।'

सोचा - सच ही तो है ! यह मसाइला देश के हर ग़रीब का है, जो बढ़ती हुई कीमतों के बोझ तले अपनी खाने-पीने की तमन्ना को दफ़नाये बैठा है। यह देश उन नेताओं का मसाइला नहीं है, अपने कंधों पर अपना सलीब लेकर चलने वाले उस ग़रीबों का है जो बद से बदतर हालात के शिकार होते जा रहे हैं। नेताओं का तो यही मक़सद है अमीरों को और अमीर बनाने के नए नुख्से सामने लाकर उनका और अपना भविष्य बनाना। उनका अपना भविष्य ही तो देश का भविष्य है !

४०. दानिशमंद

मेरे एक अज़ीज़ दोस्त बहुत दिनों बाद मुझसे मिलने घर आए और चाय के दौर के साथ नई - पुरानी बातों को याद करके बीते पलों की बस्तियों में पहुँच गए।

मेरी आप बीती सुनकर वह दोस्त बातों की दौड़ में मुझसे आगे निकलते हुए कहने लगे - वो दिन भी क्या दिन थे, अक्सर लोग मेरे पास अपनी-अपनी मांग लेकर आते और मैं उनकी झोलियाँ भर देता।

क्या मतलब? मैंने सावली नज़रों से उनकी ओर देखा।

अरे, मैं सच कह रहा हूँ। कोई दस हज़ार, तो कोई पचास हज़ार, और कभी कोई सौ रुपये भी ले जाता। उसने अपनी डींग की शोख़ भावना को बरक़रार रखते हुए कहा।

तो क्या उन दिनों आप इतने अमीर थे जो उन्हें आसानी से उन्हें इतने पैसे दे देते? मेरे सवाल अब जवाब की तलब में बेक़ारार थे।

अरे भाई जो भी था, ठाठ तो वही देने का रहा, और न देने का सवाल ही कहाँ उठता था !

तो क्या देने की कोई मजबूरी थी ?

हाँ थी ! मैं बैंक में कैशियर जो था !

४१. नफ़ा - नुकसान

आॅटो से उतरते हुए मैंने पूछा, ‘‘कितना हुआ भैये?’’

‘‘सोलह रुपये !’’

बीस का नोट उसे देते मैंने कहा, ‘‘ज़रा छुटे देना। ’’

‘‘चार रुपये तो नहीं है माई, आप ही छः रुपये दें तो मैं दस का नोट देता हूँ।’’

समाधान न पाकर मैंने कहा, ‘‘पैसे तो आप लोगों का दिन रात का काम है, छुटे अपने पास रखने चाहिए।’’

‘‘माई आपको पता है जब हम बनिए से सौ रुपये का छुटा लेते हैं तो वह हमें नब्बे देता है, इतना नुकसान हम लोग कहाँ से बर्दाश्त कर पाएंगे?’’

‘‘ठीक है रहने दो।’’ उसकी बातों में न उलझ कर मैंने एक गहरी सांस ली। घर आते ही मैंने एक हलकेपन को महसूस किया, जैसे मैंने उसके नुकसान की भरपाई की हो !

४२. मैं क्या कहती

“‘उसने तुझे हलकट कहा?’’
“‘हाँ, वो ऐसाच्छ बोलीं।’’
“‘उसने कहा और तुमने सुन लिया?’’
‘हाँ। मैं उसके मुंह नहीं चाहती थी।’’
“‘उसने ऐसा क्यों कहा? तुम पूछी भी नहीं ?’’
“‘पूछा, बोली ‘ऐसे हलकट लोगांछ ही दूसरों के घरवालों पर डोरे डालको, डाका डालते हैं।’’
“‘ऐसा कहा उसने, और तुम चुप खड़ी सुनती रही।’’
“‘मैं क्या कहती, वह माठीमिला उसका ही पति था !’’

४३. घुटने बहरे हैं।

''ज़रा रिक्शा तेज़ चलाना भाई!''
''...''
''भाई ज़रा जल्दी पहुंचाना है, तेज़ चलाओ!''
''...''
''अरे रिक्शेवाले, सुनाई नहीं देता क्या?''
''मेमसाब, मैं तो सुन रहा हूँ, पर मेरे घुटने बहरे हैं !''

४४. मसकरियाँ

“ये ले माठीमिले ! एक से काम न चले तो दो लाई हूँ।”
“अरे ये किनकों ले आयी है तू?”
“लड़कियों को !”
“अरी मूर्ख तुझे लकड़ियाँ लाने को भेजा था ..!”

४५. फटाफट

‘‘साब पैसे की सख़्त ज़रूरत है’’

‘‘...’’

‘‘साब और कितनी देर लगेगी ?’’

जवाब न पाकर बिचरा चपरासी लौटने लगा।

‘‘अरे सुनो !’’

‘‘क्या साब..!’’

‘‘ये लो।’’ परचम की तरह एक कागज़ उसकी ओर फ़हराते हुए साहब बोले।

‘‘यह क्या है साब ?’’

‘‘यह फॉर्म है, फटाफट भर डालो’’

‘‘ऐसा काइकु साब !’’

‘‘तेरा काम फटाफट होगा रे..!’’

४६. गृहप्रवेश

‘‘रुको ! आगे क़दम न रखना।’’

सजी-धजी नवेली दुल्हन आशीर्वाद लेने के लिए पाँवों की तरफ़ झुकी ही थी कि बिजली की तरह कड़कती आवाज़ ने उसे चौंका दिया। अभी तो ग्रहप्रवेश बाक़ी था, वह घर की चौखट के बाहर थी और भीतर से अनादर भारी आवाज

उसका पति आँखों में बेबसी लिए, गुमसुम नज़रों से पिता की ओर देखता रहा, एक लाचारी को झेलते हुए इतना ही कह पाया... ‘‘पिताजी...’’

‘‘अरे चुप कर, अभी छ: महीने भी न हुए, एक से जान छुड़ा भी न पाये हैं तो दूसरी ले आया। यह घर के अंदर तब ही पाँव रख पाएगी जब यह लिखकर देगी कि यह तुझसे तलाक़ नहीं लेगी।’’

नवेली दुल्हन पति की ओर सवाली निगाहों देखते हुए गणित जोड़ने लगी कि आखिर माजरा क्या है?

‘‘पहली वाली हनीमून के बाद लौटी तो अलग ही तेवर थे उसके दस दिन में तलाक के लिए अर्ज़ी दी और ५० लाख की मांग की जिसकी भरपाई मैंने जैसे खुद को गिरवी रखकर की है, अब यह दूसरी शादी ! तुम दोनों की अनबन मुझे कहीं का नहीं छोड़ेगी।’’

‘‘पिताजी !’’ नई दुल्हन कुछ कहकर भी न कह पाई।

‘‘घर में दाखिला तब ही मिलेगी, जब तुम इस दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करोगी।’’

‘‘कैसा दस्तावेज़ बाबूजी ?’’

‘‘यही कि तुम मेरे बेटे से तलाक नहीं लोगी।’’

‘‘बाबूजी, ग्रहप्रवेश की यह कैसी रस्म है ?’’

"कुछ भी समझो, पर रस्म यही रहेगी। इसकी पहली पत्नी ने इससे तलाक के साथ ५० लाख की मांग की ! जिसकी भरपाई अभी तक नहीं हो पायी है !"

४७. एक और विश्वेशरैया

सावित्री के पति अत्यंत कर्मठ और मेधावी व्यक्तित्व के मालिक रहे, अपनी निष्ठा से उन्नति के शिखर पर आ पहुंचे थे। यह सच तब प्रत्यक्ष हुआ जब उनकी नियुक्ति हरियाणा के विश्वविध्यालय में प्रचार्या के रूप में हुई।

इस सन्माननीय पद पर अपनी मोहर लगाने वो जब पहले दिन जाने को तैयार हुए, तब नाश्ते की टेबल पर सावित्री ने परिवार की ओर से पहल करते हुए बधाई और शुभकामनाएँ दीं। पति ने एक सलोनी मुस्कराहट के साथ पत्नि की ओर देखते हुए धीमे स्वर में कहा- बधाई मुझे स्वीकार है, पर शुभकामनाएँ मैं तब ही स्वीकार करूंगा जब तुम मुझसे एक वादा करोगी।

कैसा वादा...? सावित्री ने विस्मय से उनकी ओर देखते हुए पूछा

यही कि जब तक मैं इस पद पर रहूँगा, तुम कभी किसी की सिफ़ारिश मुझसे नहीं करोगी। और इस कठिन पथ पर मेरे साथ हमक़दम बनकर चलोगी।

सावित्री को सुनकर लगा जैसे धर्मक्षेत्र की सीमाओं पर उसकी भी एक कठिन धर्म-पद पर नियुक्ति हुई है। उसने मन ही मन कर्मनिष्ठा के साथ उस वादे को निभाने का वादा ख़ुद से किया। पति के इस सदप्रयास के लिए वह गद-गद हो गई।

(विश्वेशरैया की जीवनी पढ़ते हुए मुतासिर होकर यह संदर्भ लिखा है)

४८. प्रायश्चित का अधिकार

आँखों में गुस्से के डोरे अंगड़ाइयाँ ले रहे थे, और होंठ आग उगलने को आतुर। मंदिर का पुजारी भगवान को पीठ देकर ऐसे खड़ा रहा, जैसे वह मुंह दिखाने के क़ाबिल न रहा हो। उसे आभास हुआ जैसे कोई अनहोनी घटी हो। ''तुम मेरे सामने से दूर हो जाओ !'' पुजारी की गरजती आवाज़ सुनकर राह गुज़रते पथिक मंदिर के आस-पास जमा हो गई।

मैंने अपनी गलती मान ली है, अब आगे ऐसा नहीं होगा बाबूजी। पुजारी के पुत्र विकास की धीमी आवाज़ थी। बड़े शर्म की बात है, यह ग़लती नहीं अपराध है। जो कल रात तुमने किया, उस करतूत के साक्षी मंदिर के भगवान रहे। पुजारी की आवाज़ गुस्से में और भी तेज़ होती जा रही थी।

मैं जानता हूँ बाबूजी, पर रात के अंधेरे में मेरा ज़मीर भी टिमटिमाता रहा, और मैं, मैं... मय... म... और तुमने मंदिर दोस्तों के साथ मिलकर शराब पी। आज के बाद न तुम मंदिर के भीतर आओगे, न ठाकुरों को नहलाओगे, न उनके वस्त्र बदलोगे। तुमने सेवा के सभी अधिकार खो दिये हैं, अब यही तुम्हारी सज़ा है। कहकर पुजारी ने मंदिर का दरवाजा बंद किया, अपने बेटे विकास को बरामदे में ही छोड़कर अपनी कुटिया की ओर चल पड़े।

बाबूजी मैं इस आँगन में भगवान के सामने तब तक पड़ा रहूँगा, जब तक आप दोनों मुझे माफ़ नहीं करते। आप मुझसे 'प्रायश्चित' का अधिकार नहीं छीन सकते... नहीं छीन सकते !

४९. गंगा निरंतर बहती रही

अजी सुनते हो, ज़रा इन बच्चों को नहला देना अपने पति को आवाज़ देते हुए सुधा नाश्ता बनाने में लग गई। जब उसका पति रामप्रसाद वह काम निपटा चुका तो फिर आवाज़ आई , अजी नाश्ते के बाद आप बाज़ार से सौदा ले आइये, तब तक मैं घर की सफ़ाई करती हूँ ।

रामप्रसाद नौ साल की गृहस्थी में इन सारे कामों का आदी हो चुका था, पर उसके भीतर कहीं न कहीं कुछ न कुछ, कुछ नहीं, बहुत कुछ टूटता रहा बेआवाज़ ।

ज़िन्दगी का जाम उसके हिस्से में कुछ ऐसा आया, कि वह उसे न तो पी सका, न निगल सका, न थूक सका । नील कंठ सा हो गया था मानो ! घर की चाकरी करते- करते एक हीन भावना उसे भीतर ही भीतर कचोटती रहती थी । वह नौकरी की तलाश में थक हारकर निकम्मा-होकर अब घर के कामों में पत्नि का हाथ बंटने की करता । मरता क्या न करता ?

मैं एक हफ़्ते के लिये माइके जा रही हूँ, आप भी थोड़ा आराम कर लेना, अपना ख़याल रखना । मैं मुन्नी को ले जा रही हूँ, मुन्ना आपके साथ रहेगा। जब आप ऊपर जायें तो मेरा सामान नीचे लेते आइयेगा । पिताजी से पैसे भी तो लाने हैं न घर खर्च के लिए, कुछ तीन दिन तो लग जाएंगे ।

मैं नौकरी की तलाश में आज फिर जाऊंगा । शायद काम हो जाए। तुम चिंता मत करना । बहुत जल्द कुछ न कुछ हो जाएगा । भगवान पर भरोसा रखो ।

उसी भरोसे पर तो हर माह पिताजी के सामने हाथ फैलाने जाती हूँ ! आपसे जियादा अब मुझे शर्म आने लगी है, डूब मरने को जी करता है । अच्छा तुम हो आओ, अपना खयाल रखना । कहते रामप्रसाद गहरी चिंता में डूब गए । सामान नीचे दरवाज़े के पास रखते हुए रामप्रसाद ने कहा-

भाग्यवान कुछ देर ठहरना, मैं ज़रा गंगा नहाकर आता हूँ। कहकर वह बाहर निकल गया और सुधा उस आवाज़ की आहट तक न सुन पाई जो दुख के सीने से निकली। घंटा दो घंटे, और दुपहर से साँझ होने को आई, इंतज़ार लम्बा हो गया। लौटने वाला नहीं लौटा, गंगा स्नान करते तन, मन, मस्तिष्क के समस्त बोझ के साथ विलीन हो गया शायद !

और सुधा अब जब भी अपनी बच्चों को नहलाती, तो वह चीत्कार उठती है कि उसके राम उसे कैसा प्रसाद दे गए है जो आँखों से निरंतर गंगा बहती रहती है।

५०. दोहराव

पिता दीनानाथ से अपने दिल का दर्द बांटते हुए रेखा कहती रही- पिताजी मुझे तो अचानक यह पता चला कि मेरी बेटी बड़ी हो गई है। हाँ बेटी यह आभास तो अचानक ही होता है।और देखिये न पिताजी, आपकी नातिन प्यार में इतनी पागल हो गई कि सब पुराने रिश्ते, मेरी ममता, घर की मर्यादा के सारे बंधन तोड़कर, घर की चौखट लांघकर चली गई। कहते हुए रेखा ज़ोर-ज़ोर से रो पड़ी..!

बेटे प्यार में ऐसा ही होता है। तीस साल पहले मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ, मैं भी इस दौर से गुज़र चुका हूँ, जब तुम बिन बताए अपने उस दोस्त के साथ हमें छोड़कर चली गई थी। पिता ने उसकी पीठ सहलाते हुए कहा।

इतिहास खुद को दोहराने से बाज़ नहीं आता, यहाँ तक तो बात समझ में आती है, पर दीनानाथ जी अपनी बेटी के ताज़े ज़ख़्म पर मरहम रख रहे थे या अपने पुराने जख्म सहला रहे थे ..?

५१. आपसी प्रेम

एक सहेली ने दूसरी सहेली को एक सुंदर मेकअप किट गिफ़्ट के तौर दिया। जांच पड़ताल के पश्चात पाने वाली सहेली को लगा कि वह नक़ली माल है। उसे बहुत गुस्सा आया, पर उसे वह न तो निगल सकी न थूक सकी! पर भूली कुछ भी नहीं। मौक़ा पाते ही उसने भी एक नामी कंपनी का पाउडर किट गिफ़्ट व्राप करके अपनी सहेली को तोहफ़े के रूप में दिया।

अरे मीना, तुम्हें तो पता है मैं मेकअप नहीं करती, तुम ही इसे इस्तेमाल कर लो न? बड़ी अपनाइयता के साथ उसने कहा। दुगुने स्नेह भरी मुस्कान और अपनाइयत के साथ मीना ने भी उसका हाथ दबाते हुए कहा- मैं भी कहाँ नक़ली चीज़े इस्तेमाल करती हूँ। रख लो, किसी और को देने में काम आएगा।

५२. सफलता

माँ आज मेरी परीक्षा की रिज़ल्ट आई है। बच्चे ने उत्साह से घर आते यह खबर सुनाई।

माँ ने खुश होते हुए पूछा, कौन सा नंबर आया है ?

पाँचवा। तेरी क्लास में कितने बच्चे हैं ?

सिर्फ पाँच बच्चे ने मासूमियत से कहा।

५३. उदेश्य और आदेश

पिता के गुज़र जाने की खबर सुनकर बेटा विदेश से भारत आया, और विद्धि अनुसार पिता के अंतिम दाह-संस्कार संपूर्णता से अर्जित किए। पंद्रह दिन के बाद विदेश लौटते वक़्त उसने माँ के पाँव छूते हुए विदा ली, यह कहते हुए कि वह पिता की पुण्य-तिथि के लिए साल के बाद लौट आएगा और तब तक वह मास मच्छी नहीं खाएगा।

समय बीता, ग्यारह महीने होने को आए। फ़ोन पर बात करते हुए एक दिन माँ ने कहा-बेटा अब मेरी भी उम्र ढल रही है, जाने कब जीवन की आख़िरी शाम..!

'माँ ऐसा बिलकुल मत कहो।' बेटे ने बीच में ही बात काटते हुए कहा। यह तो मुझपर ज़ुल्म होगा। अभी तो पिता को एक वर्ष पूरा होने को है। मैं जैसे तैसे घास फूस पर गुज़ारा कर रहा हूँ। अगर कुछ ऐसा वैसा हुआ तो फिर मैं मर जाऊंगा। तुम तो अब कुछ साल रुक जाओ।''

५४. जहन्नुम

सूती साड़ी के पल्लू से पसीने से तर चेहरा पोंछती हुई सीड़ियाँ चढ़कर जब माला चाल में अपने घर की कुंडी पर लगा ताला खोलने लगी तो बाहर ही खड़ी पड़ोसन ने पूछ लिया-सुबह सुबह कहाँ से आ रही हो माला ?

जहन्नुम से ! खीजते हुए माला ने उत्तर दिया। अरे जहन्नुम तो ऊपर होता है, जहां लोग मरने के बाद जाते हैं... तू..! वो भी तो जहन्नुम ही है, जहा हर रात ज़िंदगी मुझे जीती है, और मैं मरती हूँ ..! अब वह ताला खोल कर जन्नत में जहां पाँव धर चुकी थी।

५५. नहले पे दहला

अरे ख़बर सुनी-उसे लोगों ने आखिर पोप बना ही दिया !

सफ़र के दौरान एक दोस्त दूसरे को बताया।

हाँ, हाँ आज ही मैंने अखबार में खबर पढ़ी...! दूसरे दोस्त ने पहले वाले दोस्त को जवाब दिया। ''अरे तो मैं कौन सा वेनिस पता लगाने गया था !'' और रेल का डिब्बे में एक साथ कई सुर उनके सुर में मिले और हंसी डिब्बे में गूंज उठी !

५६. समयानूकूल

समाज में तरह -तरह के लोग होते हैं, ठीक ऐसे ही जैसे गुलशन में रंग-बिरंगे फूल होते हैं। ऐसे आदमी अपनी फितरत व समयानुकूल अपने कार्यों को अंजाम देते है- कभी चहकते हुए, कभी महकते हुए कभी महकाते हुए।

ऐसा ही एक संयोग बना और एक ही बात साल भर से बार-बार दोहराई जा रही थी, पर उसे अमली जामा पहनाने का कार्य कल पर टाल दिया जाता रहा..! इस बात की ज़ामिन मैं थी। एक दिन अनायास ही उस सजन से फिर मेरी मुलाक़ात हो गयी। मुझे देखते ही बोले- अरे अंकिता जी एक दिन समय निकाल कर आपको लेते हुए हम मिश्रा जी के निवास पर चलेंगे और चार लोगों से सन्मुख उनका सन्मान करेंगे। मैं जल्द ही समय निकाल कर आपको सूचित करूंगा मैंने बात सुनी अनसुनी कर दी। बार-बार दोहराई हुई बात ज़्यादा अर्थ नहीं रखती। परिस्थिति और समयानुकूल, जाने क्या सोचकर एक बार फिर मिलने पर वही बात दोहराई तब जाकर मैंने पूछा- भाई पर सम्मान किस समय करोगे, सूरज उगने के पहले या सूरज ढलने के बाद !

५७. बाई जी का जूता

''बाई ज़रा रास्ता देना !'' राह चलते एक सभ्य पुरुष ने कहा।

संबोधन सुनते ही पाँव से ऐड़ी वाला जूता निकाला और बरबस शेरनी की तरह वह उसपर बरस पड़ी।

''अरे कौन बाई, किसकी बाई..!''

''अरे बाई जी।'' सभ्यता से 'जी' जोड़ते हुए पुरुष ने नर्मी से कहा।

''ओए... बाई जी होंगी तेरी माँ, तेरी बहन, तेरी बीवी, तेरे खानदान की..!''

''अरे... रे... सुनिए तो !'' उस पुरुष की आवाज़ मिमियाती रही।

''अरे नामर्द ! बाई किसे बुलाता है?''

रास्ते पर भीड़ जमा होने में वक़्त कितना लगता है। उसी भीड़ से लखनऊ का एक मियां बोल पड़ा-''अरे मियां, लखनऊ में उसे ही बाई कहते हैं जो..!

माजरा समझ में आते ही निशब्द ग्लानि के साथ पुरुष ने अपना रास्ता बदला और आगे बढ़ गया।

५८. ममता का मूल्यांकन

मुझसे दो दशक छोटी पर सोच के विस्तार में उसका क़िरदार मुझसे दो क़दम आगे और ऊंचा। ऐसी ही एक मानवी ने जब रिश्तों के निबाह और निर्वाह पर निकली बात पर अपने रिश्ते को लेकर आप-बीती सुनाई, तो सच मानिए मैं दो तीन दिन तक उस मानसिकता के बाहर न आ पाई। उसका कथन- मैं पाँच बजे काम से रुख्सत पाकर छः-साढ़े छः के बीच जब घर पहुँचती हूँ तो लगता है सभी मेरे इन्तज़ार में मायूस सन्नाटों को जी रहे होते हैं: घर के दर-दरीचे, बिस्तर पर लेटे मेरे अपाहिज पिता, माँ की देखभाल करने वाली अम्मा और मेरी माँ, जिसकी आँखें निरंतर चारों ओर घूम ने की आदी होकर जाने क्या कुछ ढूंढते हुए जब मुझपर आकर टिकती है तो वह कह उठती है- आ गई कमली ! और तद पश्चात वह सुकून से सो जाती है।

पर तुम्हारा नाम तो बीबा है न ? मैंने विस्मय में पूछा हाँ मेरी माँ का नाम कमला है, और वह अपनी इस अविकसित अवस्था में मुझको कमली के नाम से पहचानती है। सुनकर एक अजीब सी सिहरन शरीर में लहरा उठी, दिमाग में लगा कहीं बिजली कौंध उठी... माँ अपने बच्चों को पाल पोसकर बड़ा करते करते ममत्व को साधना की हदों तक ले जाने की अवस्था में अपने आप को इस कद्र भूल जाती है कि उसे अहसास मात्र नहीं रहता कि उसका अपना वजूद बच्चों में समावेश कर गया है।

सोच को ब्रेक देते हुए मैंने बीबा से पूछा- इस अवस्था में माँ कितने दिन से ह..? कुछ एक साल के क़रीब हुआ है और उनकी यह प्रतिकृया- मुझे कमली कह कर पुकारना, और उस रूप में ढूँढना, सामने देखकर राहत महसूस करना, खुद मुझे हैरत में डाल देती है। उनके मनोभावों को जानते हुए जैसे ही मैं घर में पाँव रखती हूँ, उनके सामने जाकर खड़ी हो जाती हूँ, जब तक वह अपनी आखें घुमाते हुए मुझ पर टिकाकर यह नहीं कहती- कमली

तू आ गई ! कुछ पल रुककर बीबा कहने लगी- अपने आपे से बाहर की अवस्था और खुद से भीतर जुड़ ने की अवस्था का नाम ही शायद ममता है और वह है मेरी माँ कमली !

उसके कहने और मेरे सुनने बीच का वक़्त जैसे ठहर गया। मैं कितनी सदियाँ पीछे लाँघ आई थी यह मैंने तब जाना जब उसकी आवाज़ ने मुझमें चेतना लौटाई : मैडम जी आपकी चाय ठंडी हो रही है।

५९. पानी रे पानी

ज़िंदगी में कभी घर बैठे, कभी राह गुज़रते, कभी महफ़िलों में अजीबो-ग़रीब मुद्दे सामने आ ही जाते हैं, जो याद बनकर दिल के खाली कोने भरते रहते है।

चार साहित्यकार जब किसी लेखन मंच की महफ़िल में मिलते हैं तो यहाँ वहाँ की चर्चा शुरू हो ही जाती है।

''भाई वहाँ तो बिसलरी पानी की व्यवस्था रही।''

''हाँ, छोटे छोटे पानी के ग्लास खूब फिरा रहे थे।''

''उसपर ख़र्चा काफ़ी बढ़ जाता होगा ?'''

''सरकारी पैसे होंगे...''

एक ने मुझे पास खड़े देखकर पूछा, ''दीदी आपके घर में भी कई गोष्ठियाँ होतीं हैं, आप कौन सा पानी इस्तेमाल करती हैं?''

''भाई पानी तो पानी है... मैं तो सादा नल का पानी इस्तेमाल करती हूँ। हाँ, पीने के लिए उबला हुआ पानी इस्तेमाल करती हूँ।''

६०. दम घुटता है

पति की मृत्यु के बाद अपनी पुश्तैनी मकान को बेचकर अमृता देवी ने धन को बराबर बराबर बांटकर तीनों बेटों को दे दिया। उन्होने भी अपनी ज़रूरत के अनुसार घर ले लिए और खुशी खुशी रहने लगे। धन के बँटवारे के साथ जैसे अमृता देवी का बंटवारा हुआ। चार चार महीने हर लड़के के घर रहती। चार महीने के बाद तबादला होता और फिर यही सिलसिला चलता रहा। प्रौढ़ अवस्था की दहलीज़ पर वह हाँफने लगी। उसके लिए भी कहाँ आसान था हर बार का उखड़ना और हर बार का बस जाना। अब उसे अपने घर के बहुत याद आया करती।

आहत मन से वह अपनी दर-बदर ज़िंदगी मे हराव के लिए दिन-रात भगवान से प्रार्थना करती। एक दिन बेटे ने पूछ लिया-माँ दिन रात क्या बड़बड़ाया करती हो ? कुछ नहीं बेटा बस अब अयोध्या लौट जाना चाहती हूँ। यहाँ लंका में मेरा मन घुटता है !

६१. दूध अच्छा नहीं

''अम्मा मुझे दूध नहीं चाहिए, अच्छा नहीं।'' कहते हुए तीन साल के बंटी ने कप नीचे रख दिया।

''दूध तो बहुत अच्छा है, बहुत मीठा...! पीकर स्कूल जाओगे, पढ़ोगे, लिखोगे, बड़े आदमी बनोगे..!'' माँ ने उसे बहलाते हुए कहा।

''अच्छा नहीं लगता अम्मा, तुम पीकर देखो।'' माँ बहुत शर्मिंदा हुई।

''मैं सब जानती हूँ मेरे लाल, मेरे सामने आईना रखने की ज़रूरत नहीं। मुझे पता है मैंने दूध में पानी मिलाया है। क्या करूँ? घर में सास, ससुर, जेठ जिठानी को दूध देने के पहले, हर कप से एक एक चमच दूध निकालकर उसमें चार चमच पानी और एक चमच चीनी घोलकर तुझे देती हूँ...! मुझे पता है दूध, दूध की तरह नहीं है, पानी सा लगता है। पूरी तरह से मीठा भी न होगा। मेरी आंसुओं जैसा खारा होगा मेरे लाल पर मैं क्या करूँ ? किससे कहूँ कि तेरे पिता के बाद सिर्फ़ तू ही नहीं, मैं भी अनाथ हो गई हूँ। मुझे माफ कर दे मेरे लाल। दूध अच्छा है, तेरी अम्मा खराब है, अच्छी नहीं..!''

६२. ख़ूबसूरत

सजी दुकान के सामने 'सेल' का बोर्ड देखकर आमिर रुककर बोर्ड पढ़ने लगा। लिखा था 'ख़ूबसूरत'। जाने क्या सोच कर उसने जैसे भीतर पाँव धरा कि एक सुंदर सजी धजी लड़की ने उसका अभिवादन किया।

आमिर ने मुस्कराते हुए कहा-''आपकी तरह आपकी दुकान की चीज़ें भी सुन्दर एवं लुभावनी लगती है। मैं उनमें से कुछ खरीदना चाहता हूँ।''

लड़की ने मुस्कराकर जवाब में कहा-''ज़रूर, मैं बिक चुकी हूँ। बाक़ी सब आपके सामने हैं।''

६३. ज़िन्दगी और मोर्निंग वॉक

अमेरिका में सुबह टहलने निकलो तो अक्सर देखा जाता है कि लोग तो तन्हा होते हैं, पर अपने पेट (pet) को अपना साथी मानकर चलते रहते है। एक तरह से अच्छा है, एक बात करने वाला हो और एक सुनने वाला हो तो उस जोड़ी का क्या कहना !

मैं जब सैर को निकली तो सामने से एक अँग्रेजी महिला और उसका कुता दोनों आ रहे थे:

''गुड मॉर्निंग।'' उस महिला ने अभिवादन किया।

''गुड मॉर्निंग।'' मैंने भी मुस्कराते हुए कहा।

(कुत्ता भौंकने लगा) शायद उसे मैंने ग्रीट नहीं किया, यहा सोचकर मैंने उसकी ओर मुस्कराते हुए कहा, ''गुड मॉर्निंग टू यू !''

वह फिर भौंकने लगा... 'Tim, she is a nice lady' उसकी मालकिन ने शायद उसे मानवता के अर्थ समझाने की भाषा में कुछ कहा, जिसका अर्थ मैं आज तक नहीं समझी हूँ..!

दूसरा दृश्य

‘‘गुड मॉर्निंग।’’ एक महिला ने सामने से आते हुए अभिवादन किया। साथ में उसका ‘पेट’ (pet) भी था।

गुड मॉर्निंग कहते हुए मैं आगे बढ़ी।

भौं, भौं ... भौं, भौं, भौं... वह गुर्राया..!

मेरी सवाली निगाहों को देखते ही महिला कह उठी-

"He is saying good morning to you & Wish him the same on my behalf..!"

"It is she not he..!"

"Oh, do, convey my greetings to him..!"

तीसरा दृश्य : परिचय

अगस्त महीने में चिकागो के मादक व सुहावने मौसम में सुबह सुबह अजीबो-गरीब तजुरबात होते रहे, इन्सानो को लेकर, जानवरों को लेकर और भाषाई तंज़ को लेकर..!

मुझे अपनी बिटिया के बगीचे से बाहर निकलते देख कर उसकी पड़ोसन, जो ‘खडूस’ नाम से मशहूर थी, जल्दी से अपने बगीचे की फ़ेन्स पार करते हुए मुझसे फाटक पर आ मिली-

‘‘हाइ...।’’

‘‘हाइ !’’ मैंने प्रत्युतर में कहा।

"Are you the landlady's sister?"

"No I am her mother."

"Oh ...!" उसी समय उसका पालतू कुत्ता भागता हुआ आया।

‘‘हाइ मेगन ...’’ उसने कहा।

"Nice meeting you Megan" कहकर जैसे ही मैं आगे बढ़ने लगी उसने टोका-Megan मेरी pet का नाम है। "I am Nancy."

'Oh! Nice meeting you Nancy' और चलते हुए मैं यही सोचती रही कि यहाँ लोग इन्सानी नामों से अपने जानवरों को क्यों सुशोभित करते हैं ?

६४. मॉम थैंक्स

मेरे दोनों बेटे अपनी उम्र के लिहाज से बहुत समझदार हैं और आपस में अपनी हर बात सांझी करते हैं। छोटा रोनी ४ साल का और बड़ा ७ साल का टॉम। पर बात सांझी करने का उनका तरीका कभी कभी अचम्भे में डाल देता था।

एक दिन मैंने रोनी को एक क्रीम डोनट लेकर दिया और उसे ताकीद की कि वह यह बात टॉम से न कहे। दूसरे दिन उन्हें स्कूल से पिक-अप करते हुए कार घर की ओर भाग रही थी, अचानक रोनी ने पिछली सीट से सानंद स्वर में कहा-'मॉम थैंक्स फॉर द डोनट ! टॉम की और मेरी नज़रें एक साथ उसकी ओर उठी और मैंने टॉम की आँखों में एक अनकहा सवाल देखा।

६५. ग़रीबी की रेखा

''साब ! मैं बहुत गरीब आदमी हूँ, आपके पैसे नहीं दे पाऊंगा।'' डॉक्टर ने हाथ में पकड़ी हुई मरीज़ की नब्ज़ छोड़ते हुए कहा-''कितना कमा लेते हो?''

''महीने में पाँच सौ साब ! पहले हफ़्ते ग़रीबी रेखा के ऊपर रहता हूँ, बाद में नीचे ही नीचे...!'' बात बीच में ही काटते हुए डॉक्टर ने अगला सवाल किया-''क्यों कहाँ खर्च करते हो...?''

''साब एक हो तो बताऊँ। माँ की दवा का ख़र्च, बाप को दारू के पैसे देने के पश्चाताप खुद इस चिंता का मर्ज लिए ग़रीबी की रेखा में जी लेता हूँ।''

''यह सब किस तरह संभाल लेते हो?''

''साब, ग़रीबी रेखा के नीचे जीने का अपना मज़ा है, और बहुत सारे फायदे भी हैं।'' डॉक्टर ने हैरानी से सवाली नज़रें मरीज़ पर टिका दीं।

''साब, घर फ्री, बच्चों की फीस फ्री, दवा फ्री, और हर माह ५०० रुपये भी मुफ़्त में बैठे बिठाये मिल जाते है। इसलिए मैं हमेशा इस रेखा के नीचे रहना पसंद करता हूँ।''

६६. मांसाहारी

कैलिफोर्निया में दो दिन के लिए मेरा पड़ाव श्री मोहन राय व उनकी पत्नी सुमित्रा के साथ रहा। वहीं की कुछ यादें मेरे ज़हन में पनपती रही और बरसों बाद जब भी मोहन राय जी की कही बात याद आती है तो लबों पर एक शोख़ मुस्कराहट टहलने लगती है। एक दिन बातों का रुख खान-पान के ओर मुड़ा तो मैंने उन्हें बताया कि मैं शुद्ध शाकाहारी खाना खाती हूँ। मैंने जब उनसे उनके खाने की चाहत के बारे में पूछा तो उन्होने मुस्कराते हुए कहा-''मैं भी घास-फूस से गुज़ारा कर लेता हूँ, पर कभी कभार अंडों से भी काम चला लेता हूँ।''

''और आपकी पत्नी?''

''देवी जी उनकी तो बात मत पूछिये। उसे देखकर तो मुर्गे और मुर्गियाँ सभी भागने लगते हैं...!''

और फिज़ाओं में हंसी के फव्वारे शबनम बरसाने लगे।

६७. रिश्तों की बुनियाद

‘‘अरे हल्ला क्यों मचा रहे हो? आहिस्ता बोलो मियां !’’

‘‘क्यों, आहिस्ता क्यों बोलूँ? किसीके बाप का खाता हूँ क्या ?’’

‘‘अरे तुम न सही, पर मैं तो तेरे बात का खाता हूँ। और मेरा बाप तेरे बाप का कर्जदार भी है । अगर खुनस में उसने जाकर तुम्हारी करतूतें उन्हें बता दी तो, न तुम बच पाओगे, न मैं। ‘‘कैसी दोस्ती निभा रहे हो यार, मैं तो तुमसे मदद मांगने आया था। मुझे क्या पता था कि तुम दोनों बाप-बेटे मेरे बाप का खाते हो?’’ ‘‘मियां क्या कहूँ, किस मुंह से कहूँ? बाप कम-काज करता जो नहीं। करे भी कैसे? तुम्हारी माँ इस समय भी भीतर मेरे पिता का दिमाग चाट रही है।’’

‘‘क्या कहा, अम्मी तुम्हारे घर में... अरे मर गए। पहले क्यों नहीं बताया?’’

‘‘क्यों क्या हुआ ?’’

‘‘अरे यार ...। गज़ब हुआ। अगर अम्मी सुन लेगी तो मेरी खैर नहीं। मेरे पिताजी तो उनके मुरीद है। उसीके पिता की दौलत पर गाड़ी चला रहे हैं, वरना आज से बहुत पहले धराशायी हो गए होते।’’

६८. स्पीड ब्रेकर

अगस्त क्रांति ट्रेन से दिल्ली जाना हुआ। पर हुआ कुछ यूं कि ट्रेन चलते चलते झटके लेती रही। इसका एहसास मुझे भी हुआ। इसके ऐसा पहले कभी सफर के दौरान हुआ हो मुझे याद नहीं ! सामने बर्थ पर बैठे चार नौजवान कम्प्युटर पर ऑफिस का काम कर रहे थे। एक ने इस बाधाजनक स्थिति को झेलते हुए कहा-सड़क पर तो स्पीड ब्रेकर होते हैं अब ट्रेन में भी स्पीड ब्रेकर लग गए हैं शायद...!

उन के मिले जुले ठहाकों के बीच मेरा मन ही मन मुसकराना लाज़मी था।

६९. मोल-तोल

टर्मिनल पर स्थगित गाड़ी से उतरते ही, कूलियों का हुजूम और टैक्सी, ऑटो वालों की दलाली करते लोगों का झुंड आस-पास मंडराने लगा ... मंडराने नहीं भिनभिनाने लगे।

''कहाँ जाना है?''

''बांद्रा !''

''चलिये माँ जी, आपसे ज़्यादा नहीं ३५० रुपए ही लूँगा।''

'' टैक्सी है या ऑटो?''

''ऑटो !''

''क्या आपका ऑटो मीटर से नहीं चलता ?''

''माँ जी लगेज-वगेज मिलाकर वही पड़ जाता है।''

''चलो भैये, मुझे आगे बढ़ने दो।'' कहते हुए मैं अपनी ट्रोल्ली बैग को ज़ोर-ज़बरदस्ती धकेलती आगे बढ़ी, और वह मेरे पीछे।

''चलिए, आपको माँ कहा है तो ३०० रुपये ले लूँगा।''

''ये हुई न बेटे जैसी बात ! पर मैं दो सौ से ज़्यादा नहीं दूँगी।''

''माताजी न आपकी, न मेरी २५० रुपए दे देना...दीजिये आपका थैला...!''

''अब सौतेले बेटे सी बात की है, चलो...!''

यह कहकर मैं हल्के मन से उसके पीछे चल पड़ी और घर पहुँच कर राहत की सांस ली।

७०. मैंने तुम्हें बुलाया ही नहीं !

रात के समय खाने के पश्चात घर के सभी सदस्य अपने पूर्वजों के फोटो एल्बम देखते हुए भूली-बिसरी यादों के गलियारे से गुज़रकर एक नया रिश्ता कायम कर रहे थे...!

अचानक मेरी शादी की फोटो पर उंगली रखते हुए घर के सबसे छोटे सदस्य मेरे पोते तरुण ने मेरी आँखों में झाँकते हुए कहा, ''दादी मैं इस तस्वीर में क्यों नहीं हूँ ?''

मैंने हँसते हुए कहा, ''तुम्हारे पिता भी कहाँ हैं इस तस्वीर में ?''

''दादी हम वहाँ आपकी शादी में क्यों नहीं हैं ?''

मैंने ने मुस्कराते हुए उसके गाल पर थपकी देते हुए कहा, ''क्योंकि मैंने तुम लोगों को बुलाया ही नहीं था !''

''पर क्यों...?''

''क्योंकि मैं उस वक़्त दादी बनी ही न थी...!'' दादी ने शरारत की।

''पर बुलाया क्यों नहीं ?'' कहते हुए पूछने लगा।

''यह तुम अपने पिताजी से पूछ लेना..?'' कहते हुए दादी ने अपने छोटे बेटे की ओर देखा और दोनों के होंठों पर एक मौन मुस्कराहट नाच उठी।

७१. पहचान पत्र

चार घंटे बीत जाने पर माँ थकी हारी घर लौटी। चेहरा कुछ उतरा हुआ था। पानी का गिलास सामने रखते हुए मैंने पूछा, ''क्यों क्या हुआ माँ, जिस काम के लिये गई थी वह हो गया ?''

''काम तो हो गया पर अजीब बात हो गई !'' माँ ने कुछ उलझन भरे तेवरों में कहा।

''क्यों क्या हुआ आखिर, ये तो बताओ ...?''

''अरे मैंने हमेशा की तरह २५ डालर निकालकर उन्हें देते हुए पूछा- कितने देने हैं ? कुछ भी नहीं ! अब आपको पहचान पत्र मुफ़्त मिलेगा ?''

उसने मेरा पहचान पत्र मुझे थमाते हुए कहा, ''ये तो और अच्छा हुआ, तुमसे कुछ लिया भी नहीं और तुम्हें अपना पहचान पत्र दे दिया है।''

''अरे अच्छा खाक हुआ, मुफ़्त में पहचान पत्र ! जैसे मेरी पहचान का कोई मूल्य ही नहीं है। कोई जान लेगा तो क्या सोचेगा 'फ्री में मिली पहचान है।''

''अरे माँ तुम भी अब इस उम्र में कौन सा गणित ले बैठी हो। यहां अमेरिका में सत्तर साल के बाद पहचान पत्र नये सिरे से बनाना हो तो वे कुछ भी नहीं लेते।''

''क्यों नहीं लेते? पहले दो बार तो मैंने २५-२५ डॉलर दिये हैं।''

''पर अब नहीं, तुम्हें इस खर्च से मुक्ति दी गई है।''

''मैं सब समझ रही हूँ, मुक्ति नहीं, मुझे चेतावनी दी गई है कि अब तुम इस पहचान पत्र पर जितने साल निकाल सको निकाल लो ! हां, एक बात अच्छी है वे बुरी बात भी अच्छे ढंग से कहते हैं।''

७२. मरने से बच गया

न्यूयार्क से यॉर्क तक कार से तीन से चार घंटे तो लग ही जाते हैं। हैरिसबर्ग एयरपोर्ट से सहेली को ११ बजे लेते हुए जाना था। आठ-बीस के निकले हुए थे, ट्रैफिक भी बेहद अधिक थी। दस चालीस को गाड़ी रोकी। स्टारबक्स से काफी खरीदी और अभी पीने को ही थे कि फोन की घंटी बजी। सहेली ने बताया प्लेन लैंड कर चुका है। अरे हाँ गयारह तो बजे हैं। हम अभी तक यहीं हैं। कहां हो? घंटे भर की दूरी पर। बस एक घंटे का इंतज़ार करना पड़ेगा। क्यों का हुआ? सब ठीक तो है?अरे समय पर निकले तो थे, पर वक़्त पर न पहुंच पाये। हाइवे पर एक ज़बरदस्त एक्सीडेंट हुआ है और ट्रेफिक जेम है।

मैं ड्राइविंग सीट पर बैठी बेटी की बात सुनकर हैरान हुई, कि अपनी नादानियों की कीमत किसी गरीब को बेवजह अपनी जान देकर चुकानी पड़ रही है। जब एयरपोर्ट पहुंचे तो सहेली बाहर आई और मेरी बेटी से गले मिलते हुए कहने लगी- अरे यह तो बुरा हुआ। मेरी ओर रूख करते हुए उसने कहा- आंटी आप तो ठीक हो न ? कैसे हुआ यह एक्सिडेंट ! कैसे हुआ और क्यों हुआ यह तो नहीं मालूम बेटे, पर वह बिचारा मरने से बच गया। कौन? वहीं जिसका अभी अभी एक्सीडेंट करवा दिया गया... और मेरी बेटी पहले मेरी ओर फिर अपनी सहेली की ओर देखकर मुस्कराने लगी।

७३. समस्या-समाधान

सितंबर का महीना, पहली तारीख को ही नए किराए के घर में प्रवेश किया, आमने सामने खिड़कियाँ उनसे गुजरती हवाएं गालों को छूती ताज़गी का अहसास कराती गई। बस राहत की सांस लेकर ... हाथ मुंह धोया, चाय बनाई, सुकून से पीकर कुछ आराम किया और सामान लगाने में जुट गई। रात को खाना बाहर होटल में खाकर आई और कुछ सुस्ताने के लिए जैसे ही लेटी, तो नींद ने घेर लिया।

सुबह उठी, नल खोला, पानी की बजाय खाली हवा की सरसराहट मेरे हाथों को ठंडक प्रदान करती रही, पर आँखों में निराशा के बादल और गहरे होने लगे। बिना पानी ...। क्या होगा कैसे होगा, इसी ऊहापोह में पड़ोसी का बेल बजा दिया। दरवाजा खोलने वाले बुज़र्ग को देखते ही न नमस्ते कहा, न अदब आदाब की कोई रस्म निभाई, बस बोल पड़ी-''काका सुबह से पानी की बूंद नहीं आई है, पानी कब आयेगा ?''

''अभी कल आयेगा, सुबह ८-३० से १०-०० के बीच में किसी भी समय आता है सिर्फ १० मिनट के लिए, ज्यादा नहीं आता।''

''अब कब आयेगा...अभी तो ९-२० बजे हैं।' मेरी बात अधूरी ही रह गई मेरी ज़बान में...

''आज नहीं आया, कल आया था, हम सभी टाँकी में भर लेते है और फिर वही इस्तेमाल करते हैं।''

''अच्छा काका।'' कह कर मैं नाउम्मीदी के कोहरे से घिरी घर लौट आई...पर दिल के लबों पर प्यासे जख्म रिसने लगे। निराशा के साये यूं भी मन को घेर लेते है, यह आज जाना। सुबह उठी, तो निराशा के साये आँखों में तैर आए। सूखे नल को बार बार हाथ लगाकर देखती कि नल गीला है, पानी आकर चला तो नहीं गया... हथेली वही सूखी की सूखी, वही सहरा

वाली प्यास, न बुझने के समाधान के बिना जी रही है... प्यासी प्यासी...

काका की बात से एक राहत मिली कि कल पानी आएगा, कल ही सही, चलो आज का दिन...वह भी बीत जाएगा। ब्रश को धोये बिना ही पेस्ट लगाई, और रसोई में बचे खुचे आधे ग्लास पानी को हाथ में लिए, दांतों को मलने लगी। दांत क्या मले, बस अपने मन कि समूरी भड़ास दांतों पर निकाल कर दिन की शुरूवात की...। तीन कुल्ले करने के पश्चात सोचा चौथा कर लूँ या दो घूंट पानी बचा लूँ...जाने कब काम आए। और उस बचे पानी से मुंह पर छींटे कुछ इस तरह मारे जैसे अक्सर मृतक देह को गंगा जल के छींटे मारते हुए गंगा स्नान की रस्म निभाते हैं। कुछ ऐसा ही हाल मेरा भी हुआ, बेड़ा पार समझें या गर्क ! सोचिए आगे क्या हशर होगा अगर एक दो दिन और पानी न आया तो... तो तय कर लिया कि मैं मकान बदल लूँगी। कोई और घर जहाँ पानी भी हो और...

७४. ख़िदमत

जवाबदारी लेना, उठाना, और निभाना बस शब्द मात्र रह गए है, जहां हर एक अपने-अपने नज़रिये से अभिव्यक्त शब्दों का प्रयोग करता है। पिता को गुजरे छः महीने भी न हुए थे कि बड़ा बेटा आदम, जो पास के शहर में ही रहता था, बीबी के साथ आया और अपनी ज़हरीली बातों में मिठास घोलकर कहता रहा ''सकीना तो मुझे बार बार कहती है कि माँ को यहाँ ले आओ, अकेली पड़ी रहेगी, कहीं कोई ऊंच नीच हुआ तो लोग हमें ही कहेंगे कि औलाद निकम्मी है।''

और फिर अपने खुरदरे हाथों से उसे सहलाते हुए कहा-''माँ या तो आप हमारे पास आ जाओ या हम दोनों यहाँ आकर रहेंगे और तुम्हारी ख़िदमत करेंगे।''

और यूं हुआ कि हफ्ते भर में शहर से तबादला करवाकर आदम और सकीना माँ के घर आन बसे। ख़ुद क्या आन बसे, बस बूढ़ी खातून की जड़ें कतरने लगे।

बुरा वक़्त ऐसा आया कि बेशरम नालायक आदम ने एक दिन आदमीयत की सभी लकीरें पार करते हुए ऊंची आवाज़ में बीबी सकीना को बुलाते हुए कहा-''अरे आओ भी सकीना, सिनेमा का समय हुआ जा रहा है, छोड़ो काम, अम्मा घर पर ही है वह काम निबटा लेगी।'' कहते हुए वह पत्नी के साथ सिनेमा हॉल जा पहुंचा। यहाँ बिचारी बूढ़ी हड्डियाँ बर्तन साफ करते करते, घर की सफाई में लग गई। आधार कितने निराधार होते चले जा रहे हैं, यह कल की पीढ़ी से आज का हाल सुनें...। पर खिदमत की बात मत कीजिएगा...!

७५. ओ पालनहारे

गणपति बापा मोरिया, गणपति बापा मोरिया इन नारों के साथ गणपति देव के विसर्जन तक की बात तो ठीक है, पर यह काम, हाथों में सुर साज। सभी संगीत वाध्य थमा देना, कुछ ज़्यादती है उनके साथ वे कुछ नहीं कहते इसका मतलब यह नहीं..!

यह तो उनके शान में गुस्ताखी है। एक श्रद्धेय स्वरूप को अनेक रूपों में प्रस्तुत करना। एक के हाथ में तानपुरा, एक के हाथ में डफली, और एक को थमा दिया तबला। भगवान खुद हैरान परेशान है अपनी रचना के अजीबो गरीब हरकतों से, और ये बेसबब गुस्ताखियाँ बजा फरमाते हुए 'यस सर, यस सर' करने के सिवा जैसे उनके पास अब कोई चारा नहीं।

पीढ़ी की रिक्तता का तसव्वुर इस से बेहतर और क्या हो सकता है। आज के श्रद्धालु उनसे साज़ बजवाते है और खुद नाच नाच कर उनका मनोरंजन करते हैं। पर मजबूरी है, कोई करे तो क्या? भगवान भक्तों के वश, भक्त अपनी रोज़ी रोटी, परिवार और परिवेश के वश..! बस हर जगह बाज़ार का नज़ारा है, मंदिर तक दुकान बन गए हैं। आवाज़ों के बीच बहुत कुछ खो गया है। आप भी... ओ पालनहारे !

७६. मैं मजबूर हूँ

अपने नए आशिक के साथ व्हाट्स अप पर वार्तालाप करते हुए युवती ने लिखा-

''मैं मजबूर हूँ।''

''कैसी मजबूरी?''

''मैंने दो संदेश भेजे जिनका कोई जवाब नहीं आया।'' शिकायत भरा लहज़ा था।

''पहले मैं तन्हाइयों से घिरी रहती ही, अब मजबूरियों ने मुझे घेर रखा है..!'' प्रतिउत्तर में युवती ने लिखा।

''कैसी मजबूरी?''

''तन्हाइयों से तंग आकर मैंने अपने पड़ोस के अमीर विधुर से शादी कर ली है, उसकी दो जवान बेटियाँ भी है। दिन तमाम कोई न कोई आस-पास रहता है...तन्हाई से तो बच गई, पर हाय हाय ये मजबूरी..!''

आशिक बिचारा अपना सा मुंह लेकर बढ़बढ़ाता हुआ फोन बंद कर देता है...'साली एक मिली वो भी बेवफा !'

७७. रंग में भंग

दिसम्बर महीने की एक सुबह, बर्फ सी ठंडी हवा के साथ हिच्कौले खाते, मेरे कमरे में बैठे भैया भाभी, छोटी और बड़ी बहन हाथ मल रहे थे। चाय की मांग थी, जो पूरी हुई। सभी के हाथ में चाय थी और हर घूंट के साथ हंसी के फव्वारे फूट रहे थे। बड़ी भाभी ने हँसते हुए अपनी सब से छोटी देवरानी सुनयना की ओर देखते हुए कहा।' शाम को चार बजे फिर यहीं मिलते हैं गपशप करने, और सभी को चाय सुनयना पिलाएगी...!

एक झुलसते हुए झोंके की तरह छोटी भाभी की आवाज़ की कड़वाहट ने सब के जी में बेआरामी भर दी ! सुनकर सभी के हवासों के परिंदे उड़ गए। खुशनुमा माहौल में एक कड़वाहट का ज़ायका भर दिया उस आवाज़ ने।

मैं थकी हुई हूँ, अब लुढ़की कि अब ! कहकर वह अपने बिस्तर की ओर सरकी।

इच्छा के प्रतिउत्तर में अनिच्छा का स्वाद एक कड़कती बिजली की रफ्तार से कानों से टकराया और सन्नाटे को जन्म दे गया। पल भर पहले साथ बैठकर मौज मस्ती करने वाली टोली छिटपुट होने लगी, एक एक करके सब अपने अपने कमरों की ओर आधी अधूरी बाय...अच्छा चलते हैं, कहते हुए चल पड़े।

७८. आज की ताजा खबर 'वॉट्स अप'

आज का दौर टेक्नोलॉजी का दौर है जिसके साथ कदम मिलाकर चलते चलते आदमी भी लगभग मशीन जैसा होता जा रहा है संवेदनहीन।

दोस्तों की महफिल में बैठे अरविंद बक्षी 'आज की ताजा खबर' फिर छोड़ बैठा। यही तो समय होता था जब बगीचे में सैर करते हुए कहीं गोलाकार बनाकर वह और उसके छः दोस्त बैठते और 'आज की ताजा खबर' सुनते-सुनाते।

अरविंद ने बात छेड़ी-' यार आज what's up पर मैसेज आया है जो ATM के संदर्भ में है। हिदायत है कि अगर कोई शंका जनक स्थिति हो तो मशीन में अपना पासवर्ड उल्टा डालना चाहिए। तब पैसे अटक जाएंगे और कार्य अधिकारियों को सूचना भी मिल जाएगी।

माधव सक्सेना ने सुनते ही उछल कर कहा-'यार क्या बात करते हो, यकीनन यह संदेश तो चोर-उचक्कों के पास भी गया होगा।' संजीव शर्मा जो सबसे कम उम्र के थे, विशेष चिंताजनक मुद्रा में बैठे हंसते हुए कहने लगा-' तब तो गए काम से, मशीन के पास खड़े आदमी के पीछे वह चोर उचक्का ज़रूर आवाज़ देगा-'अबे साले, उल्टा पासवर्ड डाला तो तेरी टिकट कटी कि कटी। होशियारी की तो समझो जान गई......'

सबके सब दोस्त ठहाका मारकर हंस पड़े, पर उनके ठहाकों में वह खुशी की गूंज न थी...!

७९. घर में साँप

यादें दिल के तहखाने में बसी रहती हैं. पर जब ज़हन में करवट बदलती हैं तो दिल के मुरझाए ज़ख्म फिर से हरे हो जाते हैं्। उम्र के चालीस साल के सफ़र के पश्चात भी मैं विश्वास-अविश्वास के बीच की वह झीनी सी दीवार आज तक नहीं फलाँग पाई हूँ।

मैं पुरानी बात है, अपने बच्चों को लेकर दस दिन के लिए पीहर आई्। वह शुक्रवार का दिन था, हमेशा की तरह लच्छ्म्मा अपनी साँप वाली टोकरी लिए आन पहुंची। बचपन से आज तक हर शुक्रवार के दिन वह आती, माँ से कुछ अनाज या पैसे ले जाती। माँ ने उसे एक आना दिया, और मैंने ने भी वही किया। मेरी ओर देखते हुए भैया से पूछा- बहन है?

हाँ, भैया ने जवाब दिया, मुंबई से आई है, आज लगे हाथ इसके हाथ की लकीरें भी देख लो, हमेशा उलझनों से घिरी रहती है? लच्छ्म्मा ने ताश के कुछ पते निकाल कर मेरे सामने फैलाये, और एक पत्ता लेने का इशारा किया। मैंने ने एक निकाल कर उसे दिया और उत्सुकता से कभी भाई, तो कभी लच्छ्म्मा को देखती रही। लच्छ्म्मा कुछ देर अपनी उँगलियों पर आँखें बंद किए हुए जाने कौन सा गणित गिनती रही और आँख खोलते ही भाई की ओर मुखातिब होकर धीरे से कहने लगी- आपकी बहन की लकीरें वाक़ई उलझी हुई हैं्। अगले दो महीनों में इसे साँप डसने वाला है !

साँप के उल्लेख सुनते ही मेरे माथे पर पसीने की बूंदें झिलमिलाने लगी और भाई भी कुछ चिंतित हो उठे। यह विषय भूलने जैसा भी तो नहीं रहा। कोई कुछ कहे न कहे, पर मन में एक अनजान सा डर घर बैठ ही गया। भाई से कहती तो वह सर पर हाथ फेरते कहते पगली क्या पक्के घरों में कहीं साँप होते है, तुम इस बारे में ज़ियादा मत सोचो ?

दस दिन बीते, मैं अपने बच्चों को लेकर ससुराल लौट आई, पर उस बात की व्याकुलता ने मेरा दामन नहीं छोड़ा। लगभग दो महीने बीतने को थे कि एक दिन मेरे पति अकस्मात कार एक्सिडेंट में चल बसे. साथ में जो तीन दोस्त गए थे उनका बाल भी बांका न हुआ, और तीसरे दिन शोक सभा में मुझसे मिलने भी आए।

आज चालीस साल बीत जाने के बाद भी जाने क्यों मैं कभी न किसी पंडित-पुरोहित से कोई सवाल करती हूँ, और न ही अपने बच्चों की जन्म-कुण्डलियाँ दिखाती हूँ। मुझे आज भी लगता है कि वह काल-रूपी साँप ही तो था जिसने मुझे मेरे ही घर में डस लिया !

८०. ज़िंदगी की नुक्कड़

रेल रोड के सामने गली की नुक्कड़ पर, मैंने पान की पहली दुकान लगाई. दुकान क्या थी, बस मिट्टी के टीले पर एक खोखा, उसपर लाल रंग का गीला कपड़ा बिछा हुआ, जिसपे रखे रहते पान के पत्ते, सुपारी, गुलकंद, चुना-कथ्था, कुछ मसालों के डिब्बे, और बीड़ियाँ !

आते जाते कोई बीड़ी ले जाता, तो कोई पान, कोई सिगरेट की मांग करता और निराश लौट जाता। पर रोज़गार तो रोज़गार है, चलता रहा एक पुरानी गाड़ी की तरह। एक दिन एक सुंदर सी लाल गाड़ी आकर सामने रुकी, खिड़की से पच्चास रुपये देते हुए एक नौजवान ने दो पान लिए, एक खाने के लिए और एक ले जाने के लिए, और सिगरेट की मांग की. न मिलने पर नोट देकर बिना छुटे पैसे लिए ही वह चला गया। यक़ीनन कोई रईस था। आए दिन, हफ़्ते दो हफ़्ते जब भी आता दो पान लेता और कुछ पैसे दे जाता। एक बार पाँच सौ रुपये देते हुए कहा-'दुकान ढंग में बना लो और सिगरेट भी रखा करो !'

लोगों का आना जाना लगा रहा, दुकान अच्छी चलने लगी। मैंने सिगरेट के कुछ पैकेट मंगवा लिए थे ऐसे रईस लोगों के लिए. आये दिन मैं गली की नुक्कड़ पर निहारता, उसकी बाट जोहता, और कुछ उदास हो जाता. जाने क्यों लगता जैसे मेरा कोई अपना नज़र से दूर हुआ हो। देखने को मुंतज़िर मेरी आँख उसे तलाशती, इंतिज़ार करती। कई दिन बीते, कई हफ़्ते, और अचानक छः महीनों के बाद वह आया, पर बाइक पर, आगे कोई और था, पीछे वह ! दो पान लिए और पहली बार बीड़ी की मांग की, तो मैं चौंका। ग़ौर से देखा तो हुलिया भी बदला हुआ लगा-बाल बिखरे से, आँखें लाल, और कपड़े अस्त व्यस्त ! बस हाथ हिलाता हुआ बाइक पर पीछे बैठा और चला गया। मैं बस उसी दिशा में देखता रहा, जब तक वह

नज़रों से ओझल न हुआ। जाने क्या सोचता रहा, बस मन पर उदासी के बादल छा गए।

लगभग एक महीने के बाद वह फिर आया, तो लगा जैसे वह अपने पैरों पर खड़े होने के क़ाबिल न था। मैं तख़्ते से नीचे उतरा, उसका हाथ थामा और कुर्सी पर बिठाया। दो पान उसके मिजाज़ के बनाकर उसे दिये और सवाली आँखों से उसकी ओर देखा। उसने आँखें न मिलाकर अपनी गर्दन कुछ और झुका ली। उठने की कोशिश में कुछ लड़खड़ाया पर उठते ही चला गया। लगा जैसे उसने ज़िंदगी के खेल में खुद को दाव पर लगाया हो, और ज़िंदगी से हार गया हो।

८१. ज़िंदगी ने दम तोड़ दिया

बेमौसम बरसात और बिन बुलाये मेहमान बस आन टपकते हैं, और जब अपनी मर्ज़ी से आते है, तो अक्सर जाते भी अपनी मर्ज़ी से हैं। ठीक ऐसे ही बीमारी भी आती है, और कभी यूं भी होता है कि जाते-जाते वह मरीज़ को भी अपने साथ ले जाती है।

मेरे पड़ोसी भाई राधाकृष्ण अपने परिवार सहित सुखी ज़िंदगी काट रहे थे. वे मेरे बड़े भाई के गहरे दोस्त थे, अब नहीं रहे ! बीमारी से लड़ते लड़ते आखिर थक हारकर उनकी ज़िंदगी ने दम तोड़ दिया।

अपने आप से जुड़े रहने के लिए संघर्षमय प्रयास करना पड़ता है, पर जब वक़्त बुरा आता है तो अपने साथ जुड़ी हुई अनेकों कड़ियाँ ढीली पड़ जाती है, बिना जियादा प्रयास के, अपने आप टूटना, बिखरना बरपा हो जाता है। एक दिन अचानक राधाकृष्ण जी बीमार पड़े, घर का इलाज, फिर डॉक्टरों की दवाएं, लगातार उनका सेवन और एक दिन उनके नीम बेहोशी की हालत में आने पर डॉक्टरों ने उस हालत को 'कोमा' करार कर दिया।

मध्यवर्गीय परिवार की जमा पूंजी होती ही कितनी है? दिन चर्या की दुश्वारियों से जूझना तो मुहाल होता ही है, और ऊपर से यह वज्रपात ! नाउम्मीदी से उम्मीद लगाए बैठे परिवार के सदस्य उनके होश में आने का इंतज़ार करते रहे, पर बेहोशी को होश कहाँ? छः महीने बीते, जमा पूंजी खत्म होने लगी, आखिर डॉक्टरों की सलाह से राधेकृष्ण जी को घर लाया गया। घर घर न रहा, एक तरह से हस्पताल बन गया, परिवार के लोग नर्स का काम करते रहे, सामर्थ्य अनुसार सेवा कार्य चलता रहा, पर उनकी चेतना अभी तक लौटने का नाम ही नहीं ले रही थी। परिवार के सदस्य समयानुसार उनके कपड़े बदलते, नलियों के मध्यम से जरूरी खान-पान देते, दवाई देते और उन्हें स्नान-पानी, और तन की सभी जरूरतें सेवा समझ

कर खुद किया करते।

इन सभी बातों से राधाकृष्ण जी अनिभिज्ञ रहे, जानते भी कैसे? वे तो थे पर नहीं थे, सिर्फ खुली आँखों से देखते पर कोई प्रतिक्रिया ज़ाहिर न करते। इसी तरह एक नहीं, दो नहीं, पूरे ग्यारह वर्ष बीत गए...!

संस्कार और मर्यादा जहां ज़िंदा है वहीं ज़िंदगी सांस लेती है। एक दिन अचानक राधेश्याम जी के बदन में कुछ संचार हुआ। डॉक्टर आया, जाँचकर करते हुए कहा- 'वे अब कोमा से बाहर आ रहे हैं। और उनकी देखरेख और उनके साथ व्याहवार के संबंध में अनेक हिदायतें देकर चले गए। सच में जैसे करिश्मा हुआ हो, वे आँखें खोलते, देखते, अपनों को पहचानकर मुस्कराते, और उनके हाथों हो छू लेते, सहला देते। परिवार वाले अब और भी अच्छी देख-रेख करने लगे, स्वस्थ्य रहने के लिए पौष्टिक आहार, फल, और दवाएं देते रहे।

मैंने भी अपने बड़े भाई को सुखद संदेश भेजा, और वे अपने दोस्त को देखने आए और मुस्कराते हुए कहते रहे- 'यार कितने बरस लगा दिये आँखें खोलने में....!

इस तरह एक महिना बीता. अचानक, हाँ अचानक ही तो होता है यह सबकुछ, एक भयानक हादसे की तरह। मौत के मुंह से लौट आई ज़िंदगी ने दम तोड़ दिया। राधाकृष्ण जी की देह शिथिल हो गई, आँखें पथरा गईं. बस, अपनी मर्ज़ी से ज़िंदगी अलविदा कर गई।

मैंने अपने बड़े भाई को, जो आए दिन अपने मित्र को देखने आया करते थे, तुरंत ही यह खबर पहुंचाई। वे जल्दी से चपल को घसीटते हुए आ पहुंचे। राधाकृष्ण जी के शरीर को देखते ही अपना सर पीटते हुए कहने लगे- राधे, राधे अगर जाना ही था तो ग्यारह वर्ष की प्रतीक्षा क्यों करवाई? और वे बिना चपल पहने ही लड़खड़ाते हुए घर के बाहर निकल गए।

८२. अलौकिक स्पर्श

चमत्कार ही होते हैं पर कुछ इस तरह, कि मन में इच्छा उत्पन्न होते ही सपने साकार हो जाएं। 'यह देर है अंधेर नहीं' वाली गाथा नही, आप बीती है।

ठण्ड बरपा थी। बर्फ़ का तापमान लिए एक सुबह मैं उठी, उठकर उसकी याद में बैठ गई जिसे अक्सर हम भूल जाते हैं, पर वह कभी नहीं भूलता। यह वक्त ही कुछ ऐसा है जो मांगो मिल जाए,यहां भी वहां भी। एतमाद की कभी कमी न रही, न कहीं किसी गुंजाइश की रंजिश।

एक सवा सवा घंटे के बाद उठी तो मन में एक ख्याल उपजा। बस बुज़ुर्गी की अपनी मांगे होती हैं और अपनी चाहतें. मन में इच्छा उत्पन हुई, जिसकी संभवता पूर्ति की कहीं भी गुंजाइश न थी। पर इसे तो चमत्कार ही कहा जा सकता है। पाँच मिनट भी न बीते, दरवाज़े पर धीमी दस्तक के साथ, 'मॉम' की धीमी पुकार के साथ दरवाज़ा खोल कर घर की अन्नपूर्णा कमरे के भीतर आई। हाथ में ट्रे, कप में गरमागरम चाय और बेगल, क्रीम के साथ टोस्ट किया हुआ।

'मां यही बिस्तर पर बैठी रहो, यह चाय पी लो। नीचे बहुत ठंड है।'

'मेरा कमरा ऊपर था!'

मैंने शब्द नहीं सुने उसे देखा वही जो मेरी आधी-अधूरी, कही-अनकही इच्छा के अधूरेपैन को संपूर्णता दे गयी, क्षण भर में प्रत्यक्ष! क्या कहूं? उस साक्षात्कार को मेरी आंख की नमी में डुबोकर कलम मात्र दर्ज कर रही है।

आज मुझे बरसों पहले पढ़ी गाथा याद आ रही है उस जननी की जो गोश्त की फैक्ट्री में कार्यरत थी। एक दिन वह अपना काम संपन्न करके, उस ठंडे कमरे में निगरानी के लिए गई जहां गोश्त को सुरक्षित रखा जाता था।

कुछ ऐसा हुआ कि दरवाजा भीतर से बंद हो गया और वह ठंडे कमरे की कैद में जकड़ी गई जहां किसी का भी मदद के लिए आना असंभव था। उसकी चीखें और दस्तकें सब बेकार-अनसुनी रही। बहुत सारे कर्मी समय के अनुसार काम समाप्त कर चले गए। वह मरने की कगार पर लटकी रही।

पाँच घंटे के पश्चात फैक्ट्री के चौकीदार ने उस दरवाजे को खोलकर उसे बच्चा लिया। यह भी एक चमत्कार ही था!

पूछने पर उसने बताया कि फैक्ट्री में ३५ साल काम करते हुए गुजरे हैं, उन अनेक कारीगरों के बीच वह एक ही थी जो सुबह आने पर उसे 'गुडमॉर्निंग' कहती और जाते वक्त 'गुड बॉय'। बाकी और तो उसे यूं नजर अंदाज करते जैसे उसका वहां कोई अस्तित्व ही नहीं था।

'आज सुबह आपने 'गुड मॉर्निंग' से अभिवादन तो किया और अब तक 'गुड बॉय' कल मिलते हैं। मैंने नहीं सुनी। सोचा फेरा लगा आऊं कहीं आप काम में व्यस्त तो नहीं।'

यह कथा-व्यथा नहीं एक संपूर्ण विश्वास का दस्तावेज है ! नेकी और सद्व्यह्वार कभी जाया नहीं जाते, वरदान बनकर लौटते हैं।



देवी नागरानी

लेखिका परिचय

जन्म : ११ मई, १९४१, कराची (तब भारत)
शिक्षा : बी.ए. अर्ली चाइल्ड, व गणित में विशेष डिग्री, न्यूजर्सी से।
मातृभाषा : सिंधी,
भाषाज्ञान : हिन्दी, सिन्धी, गुरमुखी, उर्दू, तेलुगू, मराठी, अँग्रेजी,
सम्प्रति : शिक्षिका, न्यू जर्सी. यू.एस.ए (सेवानिवृत)

प्रकाशित पुस्तकें

सिन्धी संग्रह :

ग़म में भीगी ख़ुशी (ग़ज़ल-२००७), उड़ जा पंछी (भजनावली-२००७), आस की शम्अ (ग़ज़ल-२००८), सिंध जी आऊँ जाई आह्याँ (कराची-२००९), ग़ज़ल (ग़ज़ल -२०१२), माँ कहिं जो बि नाहियाँ (कहानी-२०१६), किताबी समालोचनाऊँ (सिन्धी प्रेस)

हिन्दी संग्रह :

चराग़े-दिल (ग़ज़ल-२००७), दिल से दिल तक (ग़ज़ल-२००८), लौ दर्दे-दिल की (ग़ज़ल-२००८), भजन-महिमा (भजनावली-२०१२), ऐसा भी होता है (कहानी -२०१६), सहन-ए-दिल (ग़ज़ल-२०१७), और गंगा बहती रही (लघुकथा - २०१७), गुलशन कौर और कहानियाँ (प्रेस)

अनुवाद :

हिन्दी से सिन्धी अनुवाद :

बारिश जी दुआ (कहानी संग्रह-२०१२), अपनी धरती (कहानी संग्रह-२०१३), रूहानी राह जा पांधीअड़ा (काव्य-२०१४), बर्फ़ जी गरमाइश (लघुकथा-२०१४), आमने- सामने (काव्य का हिन्दी-सिंधी अनुवाद-२०१६), आँख ये धन्य है (नरेंद्र मोदी काव्य-२०१७), चौथी कूट (अनुदित कहानी संग्रह-प्रकाशन-साहित्य अकादमी)

सिन्धी से हिन्दी अनुवादः

और मैं बड़ी हो गयी (कहानी-२०१२), पन्द्रह सिन्धी कहानियाँ (कहानी-२०१४), सिन्धी कहानियाँ (कहानी-२०१४), सरहदों की कहानियाँ (कहानी-२०१५), भाषाई काव्य सौंदर्य की पगडंडियाँ (काव्य-२०१५), अपने ही घर में (कहानी-२०१६), दर्द की एक गाथा (कहानी २०१६), एक थका हुआ सच (अतिया दाऊद काव्य -२०१६), दर्द की लकीरें (कहानी -२०१७) अहसास के दरीचे (प्रांतीय-विदेशी कहानियाँ-प्रेस), रूमी मसनवी (अंग्रेजी से हिंदी-प्रेस),

अन्य अनुवादः

सफ़र- (अङ्ग्रेज़ी काव्य का हिन्दी-सिंधी अनुवाद- ध्रु तनवाणी-२०१६)
सिन्धी कथा (सिन्धी कहानी का मराठी अनुवाद- डॉ. विध्या केशव चिट्को-२०१६)

सम्मान-पुरुस्कार :

अंतराष्ट्रीय हिंदी समिति, शिक्षायतन व विध्याधाम संस्था NY -काव्य रत्न सम्मान, काव्य मणि- सम्मान- Proclamation Honor -ward-Mayor of NJ, सृजन-श्री सम्मान, रायपुर -२००८, काव्योत्सव सम्मान, मुंबई -२००८, सर्व भारतीय भाषा सम्मेलन में सम्मान, मुंबई -२००८, राष्ट्रीय सिंधी भाषा विकास परिषद पुरुस्कार-२००९, ख़ुशदिलान-ए-जोधपुर सम्मान-२०१०, हिंदी साहित्य सेवी सम्मान-भारतीय-नार्वेजीयन सूचना एवं सांस्कृतिक फोरम, ओस्लो-२०११, मध्य प्रदेश तुलसी साहित्य अकादेमी सम्मान-२०११, जीवन ज्योति पुरुसकार, गणतन्त्र दिवस-मुंबई-२०१२, साहित्य सेतु सम्मान -तमिलनाडू हिन्दी अकादमी-२०१३, सैयद अमीर अली मीर पुरुस्कार- मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति-२०१३, डॉ. अमृता प्रीतम लिट्ररी नेशनल अवार्ड, नागपुर-२०१४, साहित्य शिरोमणि सम्मान-कर्नाटक विश्वविध्यालय, धारवाड़-२०१४, विश्व हिन्दी सेवा सम्मान-अखिल भारतीय मंचीय कवि पीठ,यू.पी-२०१४, भाषांतर शिल्पी सारस्वत सम्मान- भारतीय वाङमय पीठ-कोलकता-जनवरी २०१५, हिन्दी सेवी सम्मान अस्माबी कॉलेज, त्रिशूर-केरल- सितंबर २०१५, हिंदी गौरव सम्मान-साठे कॉलेज, मुंबई-मार्च २०१७, 'हिंदी गौरव सम्मान' विश्वभाषा साहित्य और रामकथा-अन्तराष्ट्रीय संगोष्ठी-प. दीनदयाल महाविश्व-विध्यालय, सागर-२०१७

पता : 323, Harmon Cove, Secaucus, NJ. USA
Email : dnangrani@gmail.com